तिरुमल तिरुपति देवस्थान

सप्तगिरि

सचित्र मासिक पत्रिका

अगस्त-2020 रु.5/-

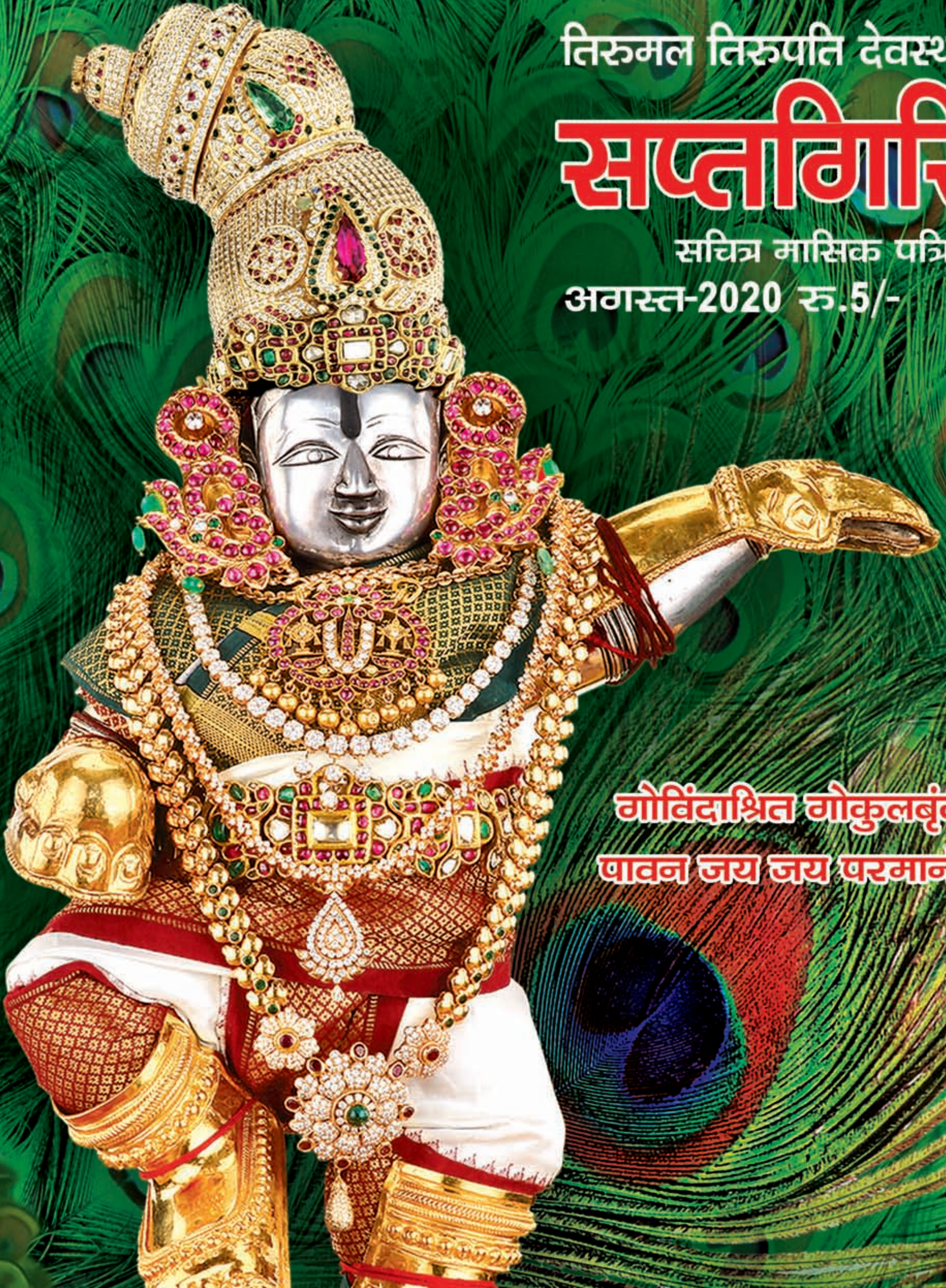

गोविंदाश्रित गोकुलबृंदा
पावन जय जय परमानंदा

गोकुलाष्टमी
१२-०८-२०२०

तिरुमल
श्री वेंकटेश्वरस्वामीजी का वार्षिक ब्रह्मोत्सव
२०२० सितंबर १९ से २७ तक

१९-०९-२०२०
शनिवार
दिन - ध्वजारोहण
रात - महाशेषवाहन

२०-०९-२०२०
रविवार
दिन - लघुशेषवाहन
रात - हंसवाहन

२१-०९-२०२०
सोमवार
दिन - सिंहवाहन
रात - मोतीवितानवाहन

२२-०९-२०२०
मंगलवार
दिन - कल्पवृक्षवाहन
रात - सर्वभूपालवाहन

२३-०९-२०२०
बुधवार
दिन - पालकी में मोहिनी अवतारोत्सव
रात - गरुडवाहन

२४-०९-२०२०
गुरुवार
दिन - हनुमन्तवाहन
रात - गजवाहन

२५-०९-२०२०
शुक्रवार
दिन - सूर्यप्रभावाहन
रात - चंद्रप्रभावाहन

२६-०९-२०२०
शनिवार
दिन - रथ-यात्रा
रात - अश्ववाहन

२७-०९-२०२०
रविवार
दिन - चक्रस्नान
रात - ध्वजावरोहण

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत्॥

(- श्रीमद्भगवद्गीता १-१३)

सेनापति भीष्म के शंखनाद के बाद बाकी योद्धाओं ने शङ्ख और नगारे तथा ढोल, मृदङ्ग और नरसिंघे आदि बाजे एक साथ ही बजाये। उनका वह शब्द बडा भयंकर हुआ।

गीताशास्त्र मिदं पुण्यं यः पठेत् प्रयतः पुमान्।
विष्णोः पद मवाप्नोति भय शोकादि वर्जितः॥

(- गीता मकरंद, गीता की प्रशस्ति)

परम पावन इस गीता शास्त्र का प्रयत्न पूर्वक जो पठन करता है वह भय एवं शोक रहित होकर विष्णुपद प्राप्त करेगा।

स्वामी के आगमन की अनुभूति
अपने ही घर में पाइए

सप्तगिरि मासिक
पत्रिका के लिए चंदा भरकर

श्रीहरि का अक्षरप्रसाद
हर महीने स्वीकार कीजिए

तिरुमल तिरुपति देवस्थान

सप्तगिरि

सचित्र मासिक पत्रिका

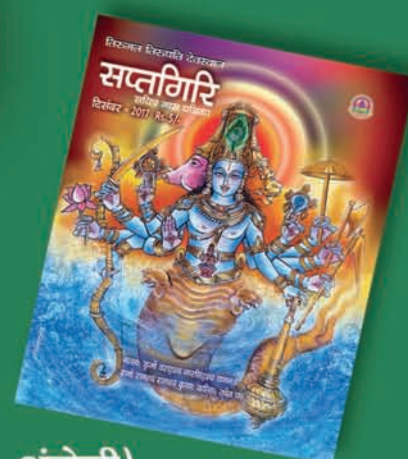

(हिंदी, तेलुगु, कन्नड, तमिल, संस्कृत, अंग्रेजी)

चंदा विवरण

वार्षिक चंदा - रु.६०/-
आजीवन चंदा - रु.५००/-
विदेशों में भेजने के लिए
वार्षिक चंदा - रु.८५०/-

संस्कृत सप्तगिरि की मासिक पत्रिका
के लिए आजीवन चंदा भरने की सुविधा नहीं है।

विवरण के लिए
प्रधान संपादक

सप्तगिरि कार्यालय,
ति.ति.दे.प्रेस काम्पाउण्ड,
के.टी.रोड, तिरुपति - ५१७ ५०१.
दूरभाष : ०८७७-२२६४३६३,
२२६४५४३.

सप्तगिरि

तिरुमल तिरुपति देवस्थान की
सचित्र मासिक पत्रिका

वेङ्कटाद्रिसमं स्थानं ब्रह्माण्डे नास्ति किञ्चन।
वेङ्कटेश समो देवो न भूतो न भविष्यति॥

वर्ष-५१ अगस्त-२०२० अंक-०३

विषयसूची

श्रीकृष्ण भगवान	डॉ.जी.मोहन नायुडु	07
श्रावण पूर्णिमा का महत्व एवं विधि	डॉ.एच.एन.गौरीराव	10
श्री हयग्रीवस्वामी	डॉ.के.एम.भवानी	15
श्री गायत्री महामंत्र	श्री पी.वी.लक्ष्मीनारायण	17
श्री यामुनाचार्य स्वामीजी (आळवंदार)	श्रीमती उषादेवी अगर्वाल	21
सम्पत्ति से बडा है स्वामी	श्री के.रामनाथन	25
विनायक चतुर्थि की महत्ता	डॉ.टी.पद्मजारानी	31
बलराम जयंती	डॉ.जी.शेक षावली	33
शरणागति मीमांसा	श्री कमलकिशोर हि. तापडिया	36
अन्नमय्या के जीवन का इतिहास	श्रीमती पी.सुजाता	38
भागवत कथा सागर भक्त प्रह्लाद की शिक्षाऍं	श्री अमोघ गौरॉंग दास	41
श्री रामानुज नूट्रन्दादि	श्री श्रीराम मालपाणी	43
हरिदास वाङ्मय में श्रीवेंकटाचलाधीश	डॉ.एम.आर.राजेश्वरी	44
कर्ता के अनुसार कार्य	श्री अमोघ गौरॉंग दास	47
श्री प्रपन्नामृतम्	श्री रघुनाथदास रान्दड	49
राशिफल	डॉ.केशव मिश्र	52
आइये, संस्कृत सीखेंगे...!!	डॉ.सी.आदिलक्ष्मी	53

website: www.tirumala.org or www.tirupati.org वेबसैट के द्वारा सप्तगिरि पढ़ने की सुविधा पाठकों को दी जाती है। सूचना, सुझाव, शिकायतों के लिए - sapthagiri_helpdesk@tirumala.org

गौरव संपादक
श्री अनिलकुमार सिंघाल, आई.ए.एस्.,
कार्यनिर्वहणाधिकारी, ति.ति.दे.

प्रधान संपादक
आचार्य के.राजगोपालन्

संपादक
डॉ.वी.जी.चोक्कलिंगम

उपसंपादक
श्रीमती एन.मनोरमा

मुद्रक
श्री पी.रामराजु
विशेष अधिकारी,
(प्रचुरण व मुद्रणालय),
ति.ति.दे. मुद्रणालय, तिरुपति।

स्थिरचित्र
श्री पी.एन.शेखर, छायाचित्रकार, ति.ति.दे., तिरुपति।
श्री बी.वेंकटरमण, सहायक चित्रकार, ति.ति.दे., तिरुपति।

जीवन चंदा .. रु.500-00
वार्षिक चंदा .. रु.60-00
एक प्रति .. रु.05-00
विदेशी वार्षिक चंदा .. रु.850-00

मुखचित्र - **नवनीतकृष्ण, तिरुमल।**
चौथा कवर पृष्ठ - **श्री विखनस आचार्य।**

अन्य विवरण के लिए:
CHIEF EDITOR, SAPTHAGIRI, TIRUPATI - 517 507.
Ph.0877-2264543, 2264359, Editor - 2264360.

सूचना

मुद्रित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखक के हैं। उनके लिए हम जिम्मेदार नहीं हैं।

- प्रधान संपादक

चरम उत्कर्ष

यह सारा ब्रह्मांड उस परात्पर की परम उत्कृष्ट सृष्टि है, जो महानुभाव समस्त देवी-देवताओं, समस्त दिक्पाल-गण और ब्रह्म, शिव आदि अग्रिम दिव्य-शक्तियों को साथ लेकर ''तिरुमल-गिरि'' पर विराजमान् है। वैकुंठ-वासी श्रीमन्महाविष्णु ही, एकल-पाद वाली धर्मदेवता को कलियुग पार कराने के महदाशय से, अपना वैकुंठ इन सात-पहाड़ों पर लाकर स्थापित कर कलियुग का निरीक्षण कर रहा है! महाविष्णु का मत ही वैष्णव-धर्म के नाम से जग में विख्यात है! वैष्णव-धर्म का मूल-सूत्र आफत में फँसे लोगों की रक्षा करना है। विपदा में जकड़े जनता की रक्षा करने-हेतु जगद्रक्षक श्रीमन्महाविष्णु ने अब तक दस अवतार धरे। व्यास, वाल्मीकि, दुर्वास, वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि बारह और उप-अवतार भी उन्हीं के हुए हैं! भगवान ने इस प्रकार समय-समय पर अवतार धर कर अवनी पर आकर सज्ज़नों की रक्षा कर, सामाजिक व्यवस्था का सुव्यस्थित तथा सुरक्षित बनाया है। भगवान ने अपने धरे हर अवतार में, लोगों की रक्षा करने के साथ-साथ, उनके रहन-सहन की भी शिक्षा दी थी।

वराहावतार में, जो महाविष्णु का धरा तीसरा अवतार था, अपने अनुयाइयों तथा भक्तजनों की काफी उत्कृष्ट व चरम उपदेश दिया है। यह पावन संदेश मानव-पंथ के लिए काफी पवित्र एवं आद्यंत अनुसरणीय बना हुआ है। श्री वराहमूर्ति इस दौरान् अपनी पत्नी भूदेवी से इस प्रकार दोहराया था - ''हे महादेवी! जो मनुष्य अपनी जवानी में, संपूर्ण स्वास्थ्य और मजबूती पायी हुई अवस्था में, मेरा स्मरण करे, मेरी स्तुति करे तो वह अपनी पायी हुई विभूति की वह कृतज्ञता मानता हूँ। ऐसे कृतज्ञ मनुष्यों की उस स्थिति में मैं उत्थान करूँगा, उसे यातना-वेदना से मुक्त बना कर, अपना वैकुंठ ले जाऊँगा, जबकि वह अपने जीवन की चरम अवस्था में मृत्यु की शय्या पर पत्थर या लक्कड़ की भांति पड़ा रहता है। वैकुंठ परम-पद में वह मेरा भक्त मेरी सेवा-सुश्रूषा में अनवरत लगा रहेगा!!''

स्थिते मनसि सुस्वस्थे शरीरे सति यो नरः। धातु साम्ये स्थिते स्मर्ता विश्वरूपं च मामजं।।
ततस्तं म्रियमाणं तु काष्ठ पाषाण सन्निभम्। अहं स्मरामि मद्भक्तं नयामि परमां गतिम्।।

इसी प्रकार विष्णु भगवान ने अपने सातवें अवतार 'रामावतार' में इस प्रकार अपने भक्तों को सुझाया था - ''सुकृति में आसक्त सर्व भूतों (प्राणियों) को मेरा अभय मिल जाता है। और, मैं उस मनुष्य से अवश्य मैत्री का आश्वासन दूँगा, जो दोष-मुक्त जीवन का अनुसरण करता हो!'' साथ में सीतामाई का भी यह उपदेश रहा है कि पापी, शुभ-चिंतक वधार्ह लोगों का श्रीस्वामी भली-भाँति पहचान कर, तथार्ह परामर्श देता है! इस प्रकार वैष्णव-धर्म के हर अवतार ने अपने-अपने ढंग की मानवालि की रक्षा व आचरण के लिए चेतावनी व सूचना दी है।

द्वापर-युग के परम संचालक श्रीकृष्ण भगवान ने अपने कथित महोप-देशि का श्रीमद्भगवद्गीता में ठीक ही इस प्रकार उपदेश दिया था- (१८-६६) ''हे मनुष्य! तुम समस्त पंथों का विसर्जन करके, केवल मेरी शरण में चले आओ! मैं तुम्हारे किये समस्त पापों (अकृत्यों) का परिहार कर, तुम्हे सद्गति (मोक्ष या मुक्ति) का प्रसादन कर देता हूँ!'' भगवान ने या सिरजनहार ने हमें हाथ, पैर, वचस, तेजस आदि महा संपदाएँ प्रदान किया है! हमें जीवन की महा विभूति का प्रसादन किया है। इसके बदले में, क्या तुम उस महादाता के प्रति तनिक भी कृतज्ञता प्रकट नहीं करोगे?! - जबकि तुम इतने मेधो-संपन्न मानव बने होते हुए!!

हमारे अपने जीवन के प्रदाता के प्रति कृतज्ञता ही ''भक्ति'' है और जब-जब आपदा में जकड़ जाने पर, उस अनन्य संरक्षक से किये जाने वाले विनम्र निवेदन का ही नाम ''शरणागति'' है! इतिहास की गति में भगवान की शरण में जाकर अनगिनत भक्तजनों ने अपना उत्थान हो पाया था। क्या तुम भगवान की शरण में न जाओगे!! और इसी महीने में वराहजयंती के साथ-साथ वामन, बलराम, हयग्रीव, विखनस जयंती व कृष्णाष्टमी, गायत्री जप, विनायक चतुर्थि का पर्व भी मनाया जा रहा है। सभी देवी देवताओं का शरणागत पाकर आशीर्वाद प्राप्त कर लें।

शुभम् भुयात्!!

श्रीकृष्ण भगवान

- डॉ.ज़ी.मोहन नायुडु
मोबाइल - ९४४१४८०४७३

धर्म और सत्य के प्रतिष्ठापक भगवान श्रीकृष्ण की लीलाएँ

भगवान विष्णु के विभिन्न अवतारों में श्रीकृष्णावतार भी एक है। इसमें उनके लोकरंजक का रूप मिलता है। द्वापर युग में भगवान विष्णु ने श्रीकृष्णावतार लेकर अधर्मियों का नाश किया। श्रीकृष्ण का जन्म कारागार में हुआ था। उनके पिता का नाम वसुदेव और माता का नाम देवकी था। भगवान ने इस अवतार में कई दुष्टों का नाश किया। कंस का वध श्रीकृष्ण ने ही किया। उन्होंने अर्जुन को संदेश दिया था कि

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥(१८-६६)

अर्थात् हे अर्जुन! सभी धर्मों को त्यागकर यानी हर आश्रय को त्यागकर केवल मेरी शरण में आओ, मैं तुम्हें सभी पापों से मुक्ति दिला दूंगा, इसलिए शोक मत करो।

कृष्ण ने युधिष्ठिर को राजा बनाकर धर्म की स्थापना की। भगवान श्रीकृष्ण भारतीय संस्कृति के एक अद्भुत एवं विलक्षण महानायक है। उनके जीवन की प्रत्येक लीला और घटना में एक ऐसा विरोधाभास दिखाई देता है जो साधारणतया समझ में नहीं आता है। वे अजन्मा होकर भी पृथ्वी पर जन्म लेते हैं। मृत्युंजय होने पर भी मृत्यु का वरण करते हैं। वे सर्वशक्ति संपन्न होने पर भी कंस के बंदीगृह में जन्म लेते हैं। श्रीकृष्ण ने मानव जाति को एक नया जीवन दर्शन दिया और जीने की शैली सिखलाई। उनकी जीवन कथा चमत्कारों से युक्त है। वे भगवान हैं पर उससे भी पहले सफल और दिव्य मनुष्य है। श्रीकृष्ण भगवान होते हुए भी सबसे अधिक मानवीय भावनाओं, इच्छाओं और कलाओं का प्रतीक है। वे अर्जुन को संसार का रहस्य बताते हैं। उन्होंने कई असुरों का वध किया। श्रीकृष्ण सच्चे अर्थों में लोकनायक है। वास्तव में उनमें ये सभी गुण पाये जाते हैं, जो मानव में विद्यमान होते हैं, कभी नहीं होते। वे संपूर्ण हैं, तेजोमय हैं, ब्रह्म हैं, ज्ञान हैं। इसके परिणाम स्वरूप उनके जीवन के प्रसंगों और गीता के आधार पर कई ऐसे नियमों और जीवन सूत्रों का प्रतिपादन हुआ है, जो कलियुग में भी लागू होते हैं।

कपट और माया से युक्त कलियुग में धर्म के अनुसार हम किस प्रकार आचरण और व्यवहार करना, किस प्रकार दूसरों को हानि न पहुँचाते हुए अपना हित देखना, इस प्रकार की शिक्षा हमें मिलती है। श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर उनके जीवन सूत्रों को हमें अपने जीवन में अपनाना चाहिए।

श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व और कर्तृत्व बहुआयामी और बहुरंगी है। उनमें चातुर्य, बुद्धिमत्ता, युद्धनीति, आकर्षण,

प्रेमभाव, गुरुत्व, सुख-दुःख आदि भाव पाये जाते हैं। भक्तों के लिए श्रीकृष्ण भगवान तो है, साथ ही वे जीवन यापन की कला भी सिखाते हैं। उन्होंने अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं से भारतीय संस्कृति में महानायक का पद प्राप्त किया। वे एक ओर राजनीतिज्ञ है, तो दूसरी ओर दर्शन के महान पंडित थे। उन्होंने धार्मिक जगत में नेतृत्व करते हुए ज्ञान, कर्म, भक्ति का समन्वयवादी धर्म प्रतिपादित किया। वे दार्शनिक और चिंतक, गीता के माध्यम से कर्म और सांख्य योग के संदेशवाहक तथा महाभारत युद्ध के नीति निर्देशक थे। परंतु साधारण ब्रजवासियों के लिए कृष्ण माखन चोर, गोपियों की मटकी फोडनेवाले नटखट कन्हैया गोपियों के चित्तचोर थे। श्रीकृष्ण के बालचातुर्य से संबंधित सूरदास का एक पद इस प्रकार है-

मैया मैं नहिं माखन खायो।
ख्याल परै ये सखा स बै मिलि, मेरे मुख लपटायो।
देखि तुहि सीके पर भाजन, ऊंचे धरि लटकायौ।
हौं जु कहत नान्हे कर अपनैं मैं कैसे करि पायौ।
मुख दधि पोंछि, बुद्धि इक कीन्ही दोना पीठी दुरायौ।
डारि सांटि, मुसकाई जसोदा, स्यामहिं कंठ लगायौ।
बाल-विनोद-मोद मन मोहुयों, भक्ति-प्रताप दिखायौ।
सूरदास जसुमति कौं यह सुख, सिब विरंचि नहि पायौ।।

गीता में उन्होंने अर्जुन से कहा कि "हे अर्जुन! जो भक्त मुझे जिस भावना से भजता है, मैं भी उसको उसी प्रकार से भजता हूँ।" उनका चरित्र एक लोकनायक का चरित्र है। वे द्वारकाधीश भी है लेकिन कभी उन्हें राजा श्रीकृष्ण के रूप में संबोधित नहीं किया जाता है। वे तो ब्रजनंदन है। समाज व्यवस्था उनके लिए आदर्श थी। इसलिए उन्होंने कर्तव्य और धर्म का पालन किया। वे प्रवृत्ति और निवृत्ति के संयोजन में सचेत थे। वास्तव में श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व भारतीय इतिहास के लिए ही नहीं विश्व इतिहास के लिए भी अलौकिक एवं आकर्षक बना रहा और सदा रहेगा। विश्व मानव कल्याण के लिए वे अपने जन्म से लेकर निर्याणपर्यंत जो उपदेश प्रकट किये हैं वे अनिर्वचनीय हैं।

श्रीकृष्ण का चरित्र अत्यंत दिव्य है। भक्तों को अपनी ओर आकर्षित करके उनके पापों को शीघ्रता से दूर करनेवाला एकमात्र भगवान श्रीकृष्ण है। उनका एक आदर्श चरित्र है जो अर्जुन की मानसिक व्यथा का निदान करते हुए एक मनोवैज्ञानिक, कंस, शकटासुर, पूतना, धेनुक, प्रलंब जैसे असुर का संहार करते हुए एक धर्मावतार, स्वार्थों से युक्त राजनीति का विरोध करते समय एक आदर्श राजनीतिज्ञ,

विश्व मोहिनी बंसी बजैया के रूप में संगीतज्ञ, ब्रजवासियों के समक्ष प्रेमावतार, सुदामा के समक्ष एक आदर्श मित्र, सुदर्शन चक्रधारी के रूप में एक योद्धा एवं सामाजिक क्रांति से युक्त है।

श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव सामाजिक समता का पक्ष है। उन्होंने नगर में जन्म लिया और गाँव में खेलते हुए उनका बाल्यकाल व्यतीत हुआ। इस तरह उनका चरित्र गाँव और नगर की संस्कृति से जोडता है, गरीब को अमीर से जोडता है। गोचरक से गीता उपदेशक होना, दुष्ट कंस को मारकर महाराज उग्रसेन को राज्य लौटाना, स्वयं अमीर होकर भी गरीब ग्वाल बालकों और गोपियों के घर जाकर माखन खाना आदि जो लीलाएँ हैं ये सब एक सफल राष्ट्रीय महामानव होने के उदाहरण हैं। कोई भी साधारण मनुष्य श्रीकृष्ण की तरह समाज की प्रत्येक स्थिति को छूकर सबका प्रिय होकर राष्ट्रोद्धारक बन सकता है। कालिय, यमलार्जुन जैसे असुरों को पल में संहार करनेवाला श्रीकृष्ण अपने प्रिय ग्वालों से मिल जाता है और खेल में हार जाता है। भगवान श्रीकृष्ण की यही लीलाएँ सामाजिक समरसता और राष्ट्रप्रियता का प्रेरक मानदंड हैं। श्रीकृष्ण ग्रामीण संस्कृति के पोषक बने हैं। वे गायों और ग्वालों के स्वास्थ्य, उनके खान-पान को लेकर सजग हैं। उन्होंने जहाँ ग्वालों की मेहनत से निकाला गया माखन और दूध-दही को स्वास्थ्य रक्षक के रूप में प्रतिष्ठित किया।

आध्यात्म के क्षेत्र में श्रीकृष्ण ही अकेले एक ऐसे व्यक्ति है जो धर्म की परम गहराइयों और ऊंचाइयों पर जाकर भी न तो गंभीर ही दिखाई देते हैं और न ही उदासीन दीख पडते हैं, अपितु पूर्ण रूप से जीवन शक्ति से भरपूर्ण है। उनके चरित्र में नृत्य है, गीत है, प्रीति है, समर्पण है, हास्य है, रास है और आवश्यकता पडने पर युद्ध को भी स्वीकार कर लेने की मानसिकता है। धर्म और सत्य की रक्षा करने के लिए युद्ध की घोषणा करता है। एक हाथ में बाँसुरी और दूसरे हाथ में सुदर्शन चक्र लेकर महा इतिहास रचनेवाला कोई अन्य व्यक्ति नहीं हुए इस संसार में। जीवन के प्रत्येक पल को, प्रत्येक पदार्थ को, प्रत्येक घटना को समग्रता के साथ स्वीकार करने का भाव उनके चरित्र में है। वे प्रेम करते हैं तो पूर्ण रूप से उसमें डूब जाते हैं, मित्रता करते हैं तो उसमें भी पूर्ण निष्ठावान रहते हैं, और यदि युद्ध स्वीकार करते हैं तो उसमें भी पूर्ण स्वीकृति होती है।

कृष्ण जन्माष्टमी त्योहार भगवान विष्णु के आठवें अवतार श्रीकृष्ण के अवतरण दिवस के रूप में मनाया जाता है। यह हिंदू धर्म की वैष्णव परंपरा से संबंधित है। इस त्योहार के संदर्भ में भगवान कृष्ण के जीवन दृश्यों को नाटक, उपवास, भागवत पुराण कथा, रासलीला, कृष्ण लीला जैसे माध्यमों द्वारा मध्यरात्रि तक प्रायोजित किया जाता है और मध्यरात्रि को भगवान कृष्ण का अवतरण समय माना जाता है। इसके दौरान भगवान कृष्ण के जन्म स्थान मथुरा, वृंदावन में मुख्य रूप से रासलीला का आयोजन किया जाता है। रास का अर्थ सौंदर्य, भावना या मिठाई, लीला, नाटक या नृत्य। रात को बारह बजे पूजा आरती के बाद प्रसाद बाँटा जाता है। इस दिन जनमानस में उल्लास और उमंग देखी जा सकती है। मंदिरों में धार्मिक अनुष्ठानों के साथ-साथ प्रत्येक घर में व्रत आदि रखकर भक्ति का अभूतपूर्व प्रदर्शन किया जाता है। झूला झूलना इस दिन की एक विशेष धार्मिक क्रिया है। इसी दिन दही-हांडी फोडना एक ऐसा खेल है, जो संपूर्ण भारत में खेला जाता है। कृष्ण जन्माष्टमी केलिए कृष्णाष्टमी, गोकुलाष्टमी, कन्हैया अष्टमी, कन्हैया आठें, श्रीकृष्ण जयंती आदि नाम भी प्रचलन में हैं।

जय श्रीकृष्ण!

श्रावण पूर्णिमा का महत्व एवं विधि

- डॉ.एच.एन.गौरीराव
मोबाइल - ९७४२५८२०००

विश्व भर में भारतीय संस्कृति और धर्म का एक विशिष्ट स्थान है। हिंदू पंचांग के अनुसार वर्ष के हर महीने की और हर दिन की खास विशेषता है। चंद्र जिस नक्षत्र में प्रवेश करता है, उस नक्षत्र के नाम पर वो महीना पुकारा जाता है। श्रावण मास में चंद्र श्रवणा नक्षत्र में प्रवेश करता है। यह मास बहुत पवित्र है, इससे इस मास में अनेक व्रत और मंगल कार्य किए जाते हैं। श्रावण मास में पूर्णिमा के दिन श्रवणा नक्षत्र के साथ चंद्रमा की मिलने तिथि 'श्रावण पूर्णिमा' कही जाती ही है।

श्रावण पूर्णिमा के विविध नाम

श्रावण पूर्णिमा के दिन देशभर में मुख्यतया हयग्रीव जयंती, रक्षाबंधन तथा उपाकर्म पूर्णिमा मनाएँ जाते हैं। यह पवित्र दिन देश के विविध प्रांतों में विविध नामों से पुकारा जाता है। वे हैं - देशभर में श्रावण पूर्णिमा, हयग्रीव जयंती, रक्षाबंधन कहा जाता हैं तो तेलुगु प्रदेश में जंध्याल पूर्णिमा, कर्नाटक में जनिवारद पूर्णिमा, तमिलनाडु में अवनी अवित्तम, महाराष्ट्र में नारियल पूर्णिमा, मध्यप्रदेश में कजरी पूर्णिमा, गुजरात में पवित्रोपना और उड़ीसा में गुम्हा पूर्णिमा कहलाता है।

श्रावण पूर्णिमा वैदिक काल से अनुष्ठित पर्व है। इस दिन के त्योहारों से संबंधित कथाएँ भी प्रचलन में है। आइए, आगे इन त्योहारों के बारे में जानने की कोशिश करेंगे।

हयग्रीव जयंती

ब्रह्मांड पुराण, देवी पुराण, गरुड पुराण और भागवत पुराण में हयग्रीव अवतार के बारे में उल्लेख है। भागवत पुराण के प्रथम अध्याय के अनुसार भगवान विष्णु के कई अवतार है, उनमें हयग्रीव अवतार एक है। उसमें भगवान हयग्रीव की कथा मिलती है वेद काल में हयग्रीव नामक एक असुर था, जिसका शरीर मानव का था और सिर घोड़ा का था। उसने माता भगवती की तपस्या करके यह वर प्राप्त किया कि

उसका वध केवल हयग्रीव से ही हो। उसका विश्वास यह था कि एक और हयग्रीव का जन्म हो ही नहीं सकता। इसी विश्वास से वह अत्याचारी बन गया और देव, ऋषि और मनुष्यों को सताने लगा। ब्रह्मादि देवता विष्णु से प्रार्थना करने गए। उस समय विष्णु युद्ध करते-करते थक कर अपने सिर को धनुष पर रखकर निद्रा में डूब गए थे। ब्रह्म ने एक वम्री को उत्पन्न करके प्रत्यंचा को काटने को कहा, ताकि भगवान निद्रा से उठ सके। वम्री के काटने से प्रत्यंचा टूट गई और विष्णु का सिर धड़ से कटकर अदृश्य हो गया। भयभीत देवताओं को माता आदिशक्ति ने सलाह दिया कि एक घोड़े के सिर को देह से जोड़ा जाए, ताकि हयग्रीव का भी जन्म होजाए और राक्षस हयग्रीव का भी वध हो जाए। देवताओं ने विश्वकर्मा की सहायता से ऐसा ही किया, तब हयग्रीव अवतार का जन्म हुआ, वह दिन श्रावण पूर्णिमा थी। इससे श्रावण पूर्णिमा को 'हयग्रीव जयंती' भी कहाँ जाता है भगवान हयग्रीव ने युद्ध में दानव हयग्रीव को मार कर लोकोद्धार किया। इसके बाद आदि दैत्य मधु-कैटभ नामक राक्षसों ने ब्रह्म देव से वेदों को चुरा लिया था। ब्रह्माजी के आग्रह पर भगवान हयग्रीव ने इन राक्षसों को मार कर पवित्र वेदों को पुनः ब्रह्म देव को सौंपकर वेदों के उद्धारक तथा ज्ञान प्रदाता के रूप में पूजनीय बन गए। अज्ञानांधकार में डूबे इस विश्व में ज्ञान का दीप जलाया। श्रावण पूर्णिमा के दिन धवल पुष्पों से हयग्रीव की पूजा किये जाने के बाद बच्चों से अक्षर अभ्यास करवाते हैं और उस समय इस श्लोक का भी पठन किया जाता है।

''ज्ञानानंदमयं देवं निर्मल स्फटिकाकृतिम्।
आधारं सर्व विद्यानां हयग्रीवमुपास्महे।।''

स्कंद पुराण के अनुसार हयग्रीव जयंती को मनाने वालों को हर दिन पूजा करना चाहिए भगवान हयग्रीव की पूजा से मनोवांछित फल पूर्ण होता है सबका मंगल होता है।

उपाकर्म

उपाकर्म वैदिक काल से आचरण में आ रहे एक सनातन पर्व है। इस पर्व के बारे में वेदों के अलावा रामायण में एक कथा मिलती है।

राजा दशरथ की कथा

एक बार राजा दशरथ शिकार करने जंगल गए थे। वहाँ भूल से राजा ने श्रवण कुमार को हिरण समझकर बाण से मारकर हत्या किया था श्रवण कुमार के माता-पिता वृद्ध और अंधे थे। श्रवण कुमार की मृत्यु से वृद्ध दंपति अति दुःख में थे और उन्होंने राजा दशरथ को पुत्रशोक से मरने का शाप दिया। दशरथ अपने किए कर्म पर पछताने लगे और उन्होंने वृद्ध दंपति से क्षमा मांग के यह आश्वासन दिया कि सावन में श्रवण कुमार की पूजा की जाएगी और रक्षा-सूत्र को लोगों से श्रवण कुमार को समर्पित किया जाएग। अतः इस दिन को श्रावणी अथवा श्रावणी उपाकर्म नाम से जाना जाता है।

उपाकर्म परंपरा

विश्व में अन्य प्राणियों से भिन्न केवल मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी था, जो सोच सकता था। पर वह अज्ञानी था। वेदों के अध्ययन से उसमें विचक्षण ज्ञान का विकास होता गया आदि में वेद अत्यंत विशाल ज्ञान भंडार थे। महर्षि कृष्णद्वैपायन ने उनको विषय और स्वरूप के अनुसार विभाजन किया यह विभाजन 'व्यास' कहा जाता हैं। इसीलिए कृष्णद्वैपायन 'वेदव्यास' कहा जाता है। अब वेदों के अध्ययन सरल बनने से मानव का ज्ञान तथा विकास होता गया। परंपरा के अनुसार वेदों का अध्ययन ब्राह्मणों से किया जाता था।

श्रावण पूर्णिमा के दिन वेदों की रक्षा होने से, ब्राह्मणों द्वारा मुख्य त्योहार के रूप में अनुष्ठान किया जाता है।

वैदिक काल में विद्यार्जन के लिए विद्यार्थी गुरुकुल में रहकर गुरु के आश्रम में अध्ययन करता था। श्रावण पूर्णिमा के दिन वेदों का अध्ययन आरंभ किया जाता था। वेदों के अनुसार उपाकर्म का अर्थ है- प्रारंभ करना, 'उप' का अर्थ है निकट, गुरु के निकट रहकर विद्यार्जन करना। वेद अध्ययन का आरंभ श्रावण पूर्णिमा के दिन किया जाता था। वेद अध्ययन में पहले छह मास अर्थात् श्रावण पूर्णिमा से माघ पूर्णिमा तक वेदों का अभ्यास (रटना) किया जाता था। बाकी छह मास वेदों के अध्ययन में सहायक वेदांगों (शिल्प, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष, छंद और निरुक्त) का अध्ययन किया जाता था। ६ महीने वेदांगों के बाद श्रावण पूर्णिमा को फिर से वेद अध्ययन आरंभ किया जाता था। ६ महीने वेदों के मंत्रों का उच्चारण नहीं होने से उन मंत्रों की शक्ति कुंठित हो जाती थी। यह दोष 'यातायाम' कहा जाता है। इस यातायाम दोष से मुक्ति तथा जीवन में अनजाने ही किए गए दोषों से मुक्ति और फिर से वेदों का अध्ययन आरंभ करने के लिए गुरु के समीप विधि-विधान पूर्वक कर्म करके नया उपवीत धारण किया जाता था।

उपाकर्म विधि

एक व्यक्ति के जीवन में उपनयन संस्कार अन्य संस्कारों से परम श्रेष्ठ है बालकों को उपनयन संस्कार करने के लिए श्रावण पूर्णिमा एक श्रेष्ठ तिथि है। जिनका उपनयन पहले हो चुका है, उनसे अपने पुराने जनेऊ का विसर्जन तथा नए जनेऊ का धारण किया जाता है। उपाकर्म विधि में पहले प्रायश्चित संकल्प, बाद में संस्कार और अंत में स्वाध्याय किया जाता है। प्रायश्चित के लिए हेमाद्री स्नान का संकल्प किया

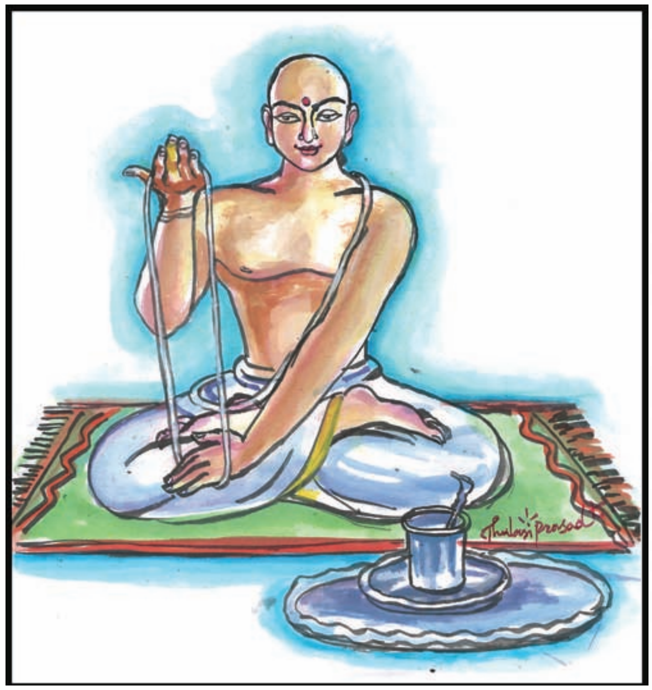

जाता है गुरु की आज्ञा से दूध, दही, घी, गोबर और गोमूत्र के साथ कुशा हाथ में लेकर मंत्रोचार किया जाता है। इसके बाद नदी में स्नान किया जाता है। दूसरा पक्ष संस्कार है गुरु के आशीर्वाद के बाद वेदव्यास तथा अन्य ऋषियों का स्मरण करके हवन किया जाता है। यह ऋषि और गुरुओं को अपनी ओर से कृतज्ञता प्रकट करने की परंपरा है हवन के बाद पुराने जनेऊ को नदी में विसर्जित करके नए यज्ञोपवीत को धारण करते हैं उपवीत धारण के समय आत्म संयम का शपथ लिया जाता है। यह संस्कार मनुष्य का दूसरा जन्म माना जाता है पवित्र उपवीत धारण के बाद उपाकर्म विधि के अंतिम चरण में वेद, वेदांगों का अध्ययन किया जाता है।

उपाकर्म की आंतरिक शक्ति इतनी है कि वैदिक काल से आज तक यह पर्व संभ्रम और श्रद्धा के साथ मनाया जाता है। वेदों के अनुसार श्रावणी उपाकर्मा अलग-अलग दिनों में मनाया जाता है। ऋग्वेद को मानने वाले श्रावण पूर्णिमा के एक दिन पहले मनाते हैं, यह 'ऋग्वेद उपाकर्मा' कहा जाता हैं। यजुर्वेद को

मानने वाले श्रावण पूर्णिमा के दिन मनाते हैं, यह 'यजुर्वेद उपाकर्मा', कहा जाता हैं।

उपाकर्म विधि में वैज्ञानिकता भी साबित होती है उपाकर्म के दिन नदी में स्नान करने से तन की शुद्धि, हवन करने से मन में शांति और स्थिरता इंद्रिय निग्रह और मंत्रोच्चारण से आंतरिक शक्ति और आत्म संयम की वृद्धि होती है। इससे शरीर में नई चेतना और सकारात्मक भावनाएँ जागृत होते है, जो मनुष्य को विकास की ओर ले जाते हैं। यह एक मनोवैज्ञानिक, आध्यात्मिक विधि है। हजारों वर्ष पुराना, ऋषि-मुनियों का अध्यात्म ज्ञानभंडार, मानव का अखंड इतिहास, देववाणी वेदों की रक्षा करना हम सबका कर्तव्य भी है। उपाकर्म पर्व इसका प्रतीक है।

रक्षाबंधन

श्रावण पूर्णिमा का एक और प्रसिद्ध त्योहार रक्षाबंधन है। यह भाई बहन के बीच प्रेम और विश्वास को स्थापित करने का त्योहार है। रक्षाबंधन का अर्थ है एक दूसरे की रक्षा करना, स्नेह को बनाए रखना। कोई भी स्त्री-पुरुष किसी की भाई बहन बन सकते हैं। बहन से भाई की मंगल कामना की जाती है तो भाई से बहन की रक्षा करने का वादा किया जाता है। रक्षाबंधन के दिन मानवीय मूल्यों की स्थापना ही नहीं पर्यावरण की रक्षा के लिए वृक्षों को भी राखी बांधी जाती है।

रक्षाबंधन से संबंधित उल्लेख तथा कहानियाँ भविष्य पुराण, पद्म पुराण, स्कंद पुराण, भगवद्गीता और वामन अवतार कथा में मिलती है इनसे संबंधित कथाओं के अनुसार रक्षाबंधन आरंभ में पत्नी से पति के हाथ को बांधी जाती थी।

इंद्र-शचि की कहानी

भविष्य पुराण में यह कहानी मिलती है। एक बार देव-दानवों के बीच युद्ध शुरू हुआ था। देव पराजित होने वाले ही थे, जिससे इंद्र बहुत हैरान हो गये। देव गुरु बृहस्पति की सलाह से शचिदेवी ने श्रावण पूर्णिमा को व्रत करके मंत्र युक्त धागे को इंद्र के हाथ में बांधा। इस धागे की असीम शक्ति से इंद्र दानवों पर विजय प्राप्त किया। तब से रक्षाबंधन विजय तथा संपत्ति के प्रतीक के रूप में मनाया जाता है।

महालक्ष्मी की कथा

इस कथा के अनुसार वामन अवतार के रूप में श्री महाविष्णु ने तीनों लोकों को नाप कर राजा बलि को पाताल में भेज दिया। राजा बलि ने भगवान विष्णु को दिन के चार पहर पाताल में अपने साथ रहकर अपनी रक्षा करने को विवश किया। महाविष्णु के बिना माता लक्ष्मी बहुत दुःखित थी, उसने नारद की सलाह के अनुसार श्रावण पूर्णिमा के दिन व्रत करके एक पवित्र धागे को महाराजा बलि के हाथ में बांधा और उसको अपना भाई माना। महालक्ष्मी ने भेंट के रूप में विष्णु भगवान को अपने साथ ले जाने का वर मांगा। राजा बलि ने अपने वचन निभाते हुए विष्णु को वैकुंठ भेज दिया।

पांचाली-कृष्ण की कथा

महाभारत के अनुसार श्रावण पूर्णिमा के दिन युधिष्ठिर के राज्याभिषेक के समय श्रीकृष्ण द्वारा शिशुपाल का वध सुदर्शन चक्र से किया गया। तब श्रीकृष्ण की उंगली को एक गहरी चोट लगी। द्रौपदी ने साडी के टुकड़े से घाव पर बांधा, जिसके बदले श्रीकृष्ण आपतकाल में सहायता करने का वादा किया पांडव जब जुए में हार गए, तब दुश्शासन द्वारा द्रौपदी को निर्वस्त्र करने का प्रयत्न किया गया, तब कृपालू श्रीकृष्ण से द्रौपदी को वस्त्र प्रदान किया गया, जिससे द्रौपदी के मान की रक्षा की गई।

केवल पुराणों में ही नहीं, भारतीय इतिहास में रक्षाबंधन से संबंधित ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिन्होंने तत्कालीन राजनीति, रणनीति और इतिहास को ही बदल देने वाले हैं।

रानी कर्णावती की कहानी

रानी कर्णावती की कहानी बहुत प्रचलन में है। मेवाड़ की रानी कर्णावती एक विधवा थी। उसके राज्य पर गुजरात के सुल्तान बहादुर शाह से हमला किया गया रानी को पराजित होने की आशंका लगी, इससे उन्होंने सम्राट हुमायूं को एक राखी भेज कर अपनी रक्षा करने को कहा। सम्राट हुमायूं ने रानी को अपनी बहन मानकर उसकी रक्षा के लिए सेना की एक टुकड़ी को चित्तौड़ की ओर भेजा, जिससे सम्राट बहादुरशाह को पीछे हटना पड़ा और चित्तौड़ की रक्षा की गई।

सिकंदर और पोरस की कहानी

राजा सिकंदर तथा पुरु (पोरस अथवा पुरुषोत्तम) के बीच युद्ध हुआ। पुरु शक्तिशाली राजा था। कभी भी न हारने वाले सिंकदर को भी पुरु से हारने का डर था, इससे सिकंदर की पत्नी ने पुरु को राखी बांधकर सिकंदर को न मारने का वादा लिया। युद्ध करते समय सिकंदर को मारने का अवसर मिलने पर भी वादा याद कर के पुरु ने उसे नहीं मारा। कुछ समय बाद पुरु को बंदी बनाया गया। परंतु उसके सद्‌गुणों के सामने नतमस्तक होकर, सिकंदर ने उसके राज्य को वापस सौंपा।

रक्षाबंधन विधि

रक्षाबंधन के दिन सुबह को नहाके शुद्ध होकर भाई बहन से भगवान की पूजा की जाती है। एक थाली में दीप, कुंकुम, हल्दी, अक्षत, रंग-बिरंगी राखियां रखे जाती हैं एक स्वच्छ स्थान पर भाई को बिठाके बहन

उसके माथे पर तिलक लगाती है, दिये से आरती करती है और यह मंत्र उच्चारण करते हुए राखी बांधती है।

''येन बद्धो बलि राजा दानवेंद्रो महाबल।
तेनत्वामभिबध्नामि रक्षा मा चल मा चल।।''

इसके बाद भाई को मिठाई खिलाके मुंह मीठा करती है। भाई बहन को भेंट देता है। दोनों एक दूसरे की उन्नति, भलाई की कामना करते हैं। यह रक्षाबंधन उत्तर प्रदेश में अधिक प्रचलन में था एक दूसरे की संस्कृतियों के मेल से आजकल दक्षिण में भी रक्षाबंधन का आचरण किया जाता है। महाराष्ट्र में श्रावण पूर्णिम को समुद्र में नारियल को समर्पित किया जाता है, इससे यहाँ नारियल पूर्णिमा कहा जाता है। प्रकृति भी हमारे जीवन का रक्षक है। कई स्थानों पर इस दिन वृक्षों को राखी बांधती है।

श्रावण पूर्णिमा के दोनों त्योहार उपाकर्म और रक्षाबंधन एक दूसरे के पूरक है। एक के बिना दूसरा अधूरा होता है, क्योंकि उपाकर्म से मनुष्य दोष मुक्त होकर तन, मन, आत्मा की शुद्धि प्राप्त करता है, तो रक्षाबंधन लोगों के परस्पर प्रेम, रक्षा और विश्वास को बनाए रखता है। व्यक्ति तथा समाज दोनों सुधारित होते हैं।

श्री हयग्रीवस्वामी

- डॉ.के.एम भवानी
मोबाइल - ९९४९३८०२४६

अपनी ही सृष्टि की किसी भी प्राणी चाहे वह सामान्य भक्त हो या सृष्टिकर्ता कहलानेवाला ब्रह्म हो, किसी को आवश्यकता पडने पर श्री महाविष्णु उसे दूर करने का प्रयास जरूर करेगा। अपने इस कोशिश में उन्हें बार-बार विभिन्न योनियों में अवतरित होना पडा। कभी उसे मीन तो कभी वराह और कभी उसे नरहरि बनना पडा। ऐसे ही एक बार उसे 'हयग्रीव' बनना पडा यानी घोडे का मुँह वाला। 'हयग्रीव' अवतार में भगवान विष्णु का आकार इस प्रकार है। ग्रीवा अर्थात् कंठ तक घोडे का मुँह बाकी बदन साधारण मानव का जैसा। इस विचित्र अवतार के धारण के पीछे विभिन्न कहानियाँ प्रचलित हैं।

एक प्रचलित कहानी के अनुसार मधु-कैटभ नामक राक्षसों ने ब्रह्म से वेदों को चुराकर ले गए तो श्री महाविष्णु ने हयग्रीव आकार में उन दैत्यों को मारकर वेदोद्धारण किया। वेद अर्थात् ज्ञान। ज्ञान को देने के कारण 'हयग्रीव अवतार को ज्ञान प्रदाता' माना जाता है।

हयग्रीव अवतार के बारे में महाभारत के शांतिपर्व में बताया गया है और हरिवंश में हयग्रीव की उपासना विधि को बताया गया है।

श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को हयग्रीव जयंती मनाते है। देवी भागवत के एक कहानी के अनुसार प्राचीनकाल में हयग्रीव नामक एक दानव ने घोर तपस्या करके यह वर पाया कि उसीके जैसे शरीर वाले के हाथ में उसका मृत्यु होना है क्योंकि उस समय में उसका आकार विचित्र था। उसका मुँह घोडे का, बदन मानव जैसा तो राक्षस ने समझा कि उसीके जैसा दूसरा प्राणी सृष्टि में नहीं है इसीलिए उसे कभी मृत्यु प्राप्त नहीं होगा। वह अमर रह सकेगा। उस घमंडी राक्षस को मारने के लिए भगवान श्रीहरि को हयग्रीव बनना पडा।

हयग्रीव भगवान की स्तुति करते हुए हयग्रीवोपनिषद में बहुत ही महत्वपूर्ण श्लोक बताए गए हैं -

शंख चक्र महामुद्रा पुस्तकाढ्यम् चतुर्भुजम्।
संपूर्ण चंद्र संकाशम हयग्रीव मुपास्महे।।
विश्वोत्तीर्ण स्वरूपाया चिन्मयानंद रूपिणि।
तुभ्यम् नमो हयग्रीव विद्या राजाय विष्णवे।।

समस्त विद्याओं को प्रदान करनेवाला हयग्रीव जयंती के दिन विद्या या वेदारंभ करना शुभ माना जाता है। हयग्रीव व्रत नाम से उसकी स्तुति करके उसे भोग चढाते हैं।

बौद्ध धर्म में हयग्रीव स्वामी

हिंदु पुराणों के साथ-साथ बौद्धों के इतिहास में भी हयग्रीव का वर्णन मिलता है। बौद्ध धर्म का पालन करनेवाले चीन, तिब्बत, जापान आदि देशों में मिले ऐतिहासिक आधारों के अनुसार माना जाता है कि उन देशों में भी हयग्रीव की आराधना होती थी। तिब्बत

के लोग हयग्रीव को रोगों से मुक्ति देनेवाला चिकित्सक मानते हैं जहाँ हमारे देश में हयग्रीव को विद्या या ज्ञान दाता मानते हैं वहाँ उन्हें रोग मुक्त कारक मानते हैं। चीन और जापान में भी हयग्रीव की आराधना, उनकी मूर्तियाँ देखने को मिलती हैं।

श्रीललिता सहस्रनाम - हयग्रीव भगवान

ऋषि अगस्त्य कलियुग के मानवों के दुखों से विचलित होकर उनके निवारण मार्ग के बारे में भगवान से पूछा तो भगवान ने कहा - विद्याओं का आधार मूर्ति हयग्रीव के अवतार में तुम्हे 'श्रीललिता सहस्रनाम' का उपदेश करूँगा जिन्हें पढने से लोग पाप मुक्त होकर ज्ञानवान बनेंगे। इस प्रकार आज हम सब पढनेवाले श्रीललिता सहस्रनाम स्तोत्र भगवान हयग्रीव के कारण ही दुनिया में आए। मानव तर गए। कंची कहलाए जानेवाले कांचीपुरम में हयग्रीव एक ऋषि वेश धारण करके अगस्त्य को श्री ललिता सहस्रनाम स्तोत्र का उपदेश दिया इसीलिए उसके अंत में कहा गया है-

इति श्री ब्रह्मांड पुराणे, उत्तर खंडे, श्री हयग्रीव अगस्त्य संवादे श्री ललिता रहस्य नाम सहस्र स्तोत्र कधनम् नाम द्वितीयोध्यायः। इसके साथ तृतीयोध्याय में ललिता सहस्रनाम फल निरूपणम भी बताया गया है। इस तरह ज्ञान प्रदाता हयग्रीव की आराधना करके धन्य हो जाएँगे।

ॐ वागीश्वराय विद्महे
हयग्रीवाय धीमही
तन्नो हंस प्रचोदयात्।।

तिरुमल में दर्शनीय क्षेत्र

स्वामिपुष्करिणी : मंदिर के निकट स्थित यह तालाब अतिपवित्र है। यात्री मंदिर में प्रवेश करने के पूर्व इसमें स्नान करते हैं। आत्मा व शरीर की शुद्धि के लिए यहाँ स्नान करना श्रेष्ठ है।

आकाश गंगा : मंदिर की उत्तरी दिशा में लगभग ३ कि.मी. की दूरी पर स्थित है।

पापविनाशनम् : मंदिर की उत्तरी दिशा में ५ कि.मी. की दूरी पर स्थित है।

वैकुंठ तीर्थ : मंदिर की ईशान दिशा में लगभग ३ कि.मी. दूरी पर स्थित है।

तुम्बुरु तीर्थ : मंदिर की उत्तरी दिशा में १६ कि.मी. की दूरी पर स्थित है।

भूगर्भ तोरण (शिलातोरण) : यह अपूर्व भूगर्भ शिलातोरण मंदिर की उत्तरी दिशा में १ कि.मी. की दूरी पर स्थित है।

ति.ति.दे. के बाग-बगीचे : देवस्थान के दिशा-निर्देश सुंदर व आकर्षक बगीचे लगे हुए हैं, जिनमें विशिष्ट पेड व पौधे मिलते हैं।

आस्थान मंडप (सदस हाल) : यहाँ धर्म प्रचार परिषद् के दिशा-निर्देश में धार्मिक कार्यक्रम चलाये जाते हैं। जैसे भाषण, संगीत-गोष्ठी, हरिकथा-गान एवं भजन।

श्री वेंकटेश्वर ध्यान ज्ञान मंदिर (एस.वी. म्यूजियम्) : इस कलात्मक सुंदर भवन में एक म्यूजियम्, ध्यान केंद्र तथा छायाचित्र-प्रदर्शिनी आयोजित है।

ध्यान केंद्र : तिरुमल के एस.वी. म्यूजियम् एवं वैभवोत्सव मंडप में स्थित ध्यान केंद्रों में भगवान पर ध्यान केंद्रित कर भक्त शांति को प्राप्त कर सकते हैं।

श्री गायत्री महामंत्र

- श्री पी.वी.लक्ष्मीनारायण
मोबाइल - ९४४१२५४०६१

प्रस्तावना

'मननात् त्रायते इति मंत्रः' - अर्थात् 'स्मरण-मात्र से जो रक्षा करे, वह मंत्र है!' मतलब मंत्र हमारी रक्षा करता है। मनुष्यों की विवश-दशा में रक्षा करने के लिए मंत्र हैं। हमारे पूर्वजों ने, याने, बुजुर्गों ने मानवों को असहाय स्थिति में रक्षा करने के लिए मंत्रों का संकलन किया था। मंत्रों की पुरातन काल में काफी प्रचुरता होती थी। तरह-तरह के संदर्भों में मंत्रों का उवाचन होता था।

विवाह के संदर्भ में मंत्र-पठन होता है, जो आज भी देखा जा रहा है। यज्ञ-यागादियों के दौरान मंत्रों का जोरदार पठन होता है। मंत्र आदि बीजाक्षरों के संचयन या संकलन से उत्पन्न होता है। मंत्रों में बिठाये हुए बीजाक्षर शक्ति-मूलक होते हैं, जिनके सही ढंग के उच्चारण से देवताओं का आवाहन होता है। देवताओं के आवाहन से इष्ट कामनाओं की सिद्धि हो पाती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि मंत्रों के शक्तियुत उच्चारण से देवताओं का आह्वान, पूजन, स्तुति, काम्यार्थ-निवेदनों के द्वारा, सिद्ध-पुरुष अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर लेते हैं। इसी दृष्टि-कोण में अनेकानेक मंत्रराज हैं, जिनमें ''श्री गायत्री महामंत्र'' अति प्रसिद्ध है।

गायत्री महामंत्र का उद्भव

गायत्री महामंत्र ब्रह्मर्षि विश्वामित्र नामक महानुभाव के द्वारा सृजित किया गया था। चंद्रवंश के राजा कुशांबु था। कुशांबु का गाधिराजा नामक पुत्र था। राजा विश्वामित्र इसी गाधिराजा का पुत्र था। अपने पिता के अनंतर विश्वामित्र महाराजा ने राज-सिंहासन का परिग्रहण किया था।

एक कामधेनु-हेतु कालांतर में वशिष्ठ महर्षि के साथ संघर्ष करना पड़ा। इस होड़ में राजा विश्वामित्र ने आप स्वयं ब्रह्मर्षि बनना चाहा। कठोर तपोसाधना से विश्वामित्र स्वयं महर्षि बना। सब देवताओं, सिद्ध-पुरुषों तथा राजा-महराजाओं से उस दौरान ब्रह्मर्षि विश्वामित्र ने सम्मान पाया।

आपके ब्रह्मर्षि कहलाने के शुभ संदर्भ में, विश्वामित्र ने, अपनी याद में, इस जगत को एक पुरस्कार प्रदान करना चाहा। जगत को उसी उपहार के तौर पर ब्रह्मर्षि विश्वामित्र ने गायत्री-छंद में ''श्री गायत्री महामंत्र'' का संकलन किया था!!

गायत्री महामंत्र

गायत्री महामंत्र २४ अक्षरों की व्याहृतियों का एक समाहार है। व्याहृति का अर्थ शक्तिपूर्ण उच्चारण वाले स्थानापन्न अक्षर है।

ॐ भूर्भुवस्सुवः।

तत्सवितुर्वरेण्यम्।

भर्गो देवस्य धीमहि।

धियो यो नः प्रचोदयात्।।

यह है ब्रह्मर्षि विश्वामित्र द्वारा सर्व-संकलित (निर्मित) श्री गायत्री महामंत्र का वास्तव स्वरूप है।

अर्थ-विवरण

सवितृदेवता (सूर्यभगवान) के तेज-पुंज की महिमा की स्तुतिपूर्वक इस महामंत्र का श्रीमान् आदिशंकराचार्य महापाद ने विपुलीकृत गूढार्थ की व्याख्या एवं अर्थ-विवरण कर दिया है! वह कुछ इस प्रकार है -

''सवितृदेवता के किस प्रकार का तेज-पुंज अपने धार्मिक या तदनुगुण-रूपी कर्मों की प्रेरणा करे, उस प्रकार का तेजःपुंज मैं ही कहते हुए या ''मैं'' नामक शब्द-द्वारा सूचित व्यक्ति उस प्रकार के तेजःपुंज के रूप में हुए परब्रह्म से जो अलग नहीं, उसका हम ध्यान करें!!''

गायत्री महामंत्र का साधारण अर्थ-विन्यास हम कुछ इस प्रकार कर सकते हैं -

''भूलोक, भुवर्लोक, सुवर्लोक नामक सातों ऊर्ध्व-लोकों का जो नियामक है, जो कांति-प्रसरण का अधिनायक है, जो स्वयं कांति है और जो इन सातों ऊर्ध्व-लोकों की प्राणियों की बुद्धि का संचालन करता है - उस सर्व समर्थ, सर्व-श्रेष्टतम सवितृदेवता की बहु विनम्र वंदना हम करते हैं!!''

गायत्री महामंत्र का इतिहास

हिन्दू-धार्मिक इतिहास की परंपरा में सर्वश्रेष्ठ मंत्र-राज कहलाने वाला यह मंत्रराज कई हजार साल पूर्व, संसार-भर के सर्व प्रथम निर्मित ग्रन्थ ऋग्वेद में संकलित किया हुआ है। गायत्री महामंत्र ऋग्वेद का एक सर्वश्रेष्ठ मंत्र है। इस महामंत्र का संकलन पुराणेतिहासों में प्रसिद्ध ब्रह्मर्षि विश्वामित्र ने किया था।

गायत्री महामंत्र का बहिरंग उच्चारण नहीं किया जाता था। अर्थात् खुले में इसा पठन नहीं होता था। शूद्रों, स्त्रियों तथा बालकों को इसके सुनने, कंठस्थ करने, मनन करने तथा उच्चारण करने पर कड़ी पाबंदी लगा दी गयी थी! इस कारण से कि यह कहीं अपवित्र न हो जाय।

गायत्री महामंत्र केवल ब्राह्मण-कुल को ही अंकित था, वह भी सिर्फ पुरुषों के लिए। एक ब्राह्मण-पुरुष, अपने पुत्र के उपनयन की बेला में, उसके कान में रहस्यमयी ढंग से गायत्री महामंत्र का उपदेश करता था! इसका जोरदार उच्चारण मना था।

गायत्री महामंत्र का वैशिष्ट्य

गायत्री महामंत्र अत्यंत शक्तिमान् बीजाक्षरों से निर्मित है, जो स्वयं सूर्यशक्ति के निलय हैं। इस मंत्रराज में ग्रह-घोषा निहित कहा जाता है। इस मंत्र के निर्माता ब्रह्मर्षि विश्वामित्र तथा उनके शिष्यों ने एक विशेष प्रयास से आसमान में संचरित ब्रह्मांड-भांड के ग्रहों को परिक्रमा में उत्पन्न महा घोष-ध्वनि सुन पायी थी! हम साधारण मानव इसे सुनने की क्षमता नहीं रखते हैं!! घोष-ध्वनि में सूर्य-ग्रह की अपार शक्ति-संपदा निक्षिप्त व विक्षिप्त रहती है। आधुनिक वैज्ञानिक उसे ''कॉस्मिक एनर्जी'' नाम से पुकारते हैं।

हजारों साल पहले ही ब्रह्मर्षि विश्वामित्र ने अंतरिक्ष में निक्षिप्त कॉस्मिक एनर्जी को अति सुलभ रीति से श्री गायत्री महामंत्र में आवाहित कर, साधारण प्रजा को वरदान के रूप में बहूकृत किया है। यह कोई साधारण बात नहीं!!

श्री गायत्री महादेवी

इन भूलोक, भुवर्लोक, सुवर्लोकादि चौदहों भवनों में समस्त जीव-जंतुओं के मेथस का, स्तुतिपूर्व ढंग से, उस सूर्यभगवान ही संचालन कर रहा है, जो कांति का अधिनायक है! (ऐसे भर्गोदेव सूरज भगवान् को शत-कोटि प्रणाम! कृतज्ञताएँ!! ऐसे महिमावान् हे कांतिदेव! मेरी बुद्धि को भी जय-कार्यों की तरफ चालित करो!!) - यह है गायत्री महामंत्र का अंतरार्थ।

'गायनात् त्रायते इति गायत्री!' जिसका गायन किये जाने से अथवा जिस मंत्र के जप किये जाने से, दुःख-सागर से रक्षा मिल जाती है, वही गायत्री है। 'गायत्री' का अर्थ है - गायन से जो अविष्कृत होता हो, वह!!

गायत्री एक देवता है। वह मनुष्यों की बुद्धि, मेथा, मूळों की अधिदेवता है। वह पंच-मुखी है और आलाप-पिंजड़े का तोता है!

वास्तव में गायत्री स्थिर रूपी नहीं है। वह नहीं है- भौतिक रूप में, मगर, इस मंत्र के आलाप-मात्र से उस जगह गायत्री का जनम होता है! पैदा होकर, गायत्री-मंत्र के गायन करने वाले को अपार मेथो संपत्ति देकर, उसमें सूरज के तेज को भर कर, दिशा-निर्देश देकर, कार्य-जय दिलाती है!!

गायत्री महादेवी का रूप-वैभव

शा।। मुक्ताविद्रुम हेम नील धवल
च्छायै मुँखै स्त्री क्षणै
र्युक्ता मिंदु निबद्ध रत्नमकुटां
तत्वार्थ वर्णात्मिकाम्
गायत्रीं वरदाभयांकुश कशा
श्शुभ्रं कपालं गदाम्
शंखं चक्र मथारविंद युगलं
हस्तैर्वहंतीं भजे।।

गायत्री महामंत्र के जपित किये जाने वाले प्रदेश में आवाहित होने वाले अथवा साक्षात्कार होने वाली गायत्री महादेवी के रूप के वैभव का इस महामंत्र में वर्णन किया गया है।

गायत्री महादेवी एक मंगलमय स्त्री-रूपिणी है।

उसका मुख स्वच्छ मोतियों की कांति से बना हुआ है, जिसमें सुवर्ण, नीले, सफेद रंगों का भी सम्मिश्रण हो चला है! गायत्रीदेवी के पाँच सिर हैं, जिन पर उसने रत्न-खचित मुकुटों का धारण किया है। उस मुकुटों पर अर्द्ध-चंद्र की रेखा का स्थापन हुआ है। तत्वार्थों के वर्ण ही श्री गायत्री महादेवी की आत्मा है! वह देवी अभय तथा वरद-मुद्राओं से संशोभित है। हाथों में अंकुश,

चाबुक, शुभ्र-कपाल, गदा, शंख, चक्र, अरविंद आदि साधन-संपत्ति लिए श्री गायत्री महादेवी पद्म-राग-सिंघासन पर विराजमान होती है!!

परम मंत्र-द्रष्टा विश्वामित्र महर्षि

गायत्री महामंत्र-जैसे चरमोत्कृष्ट साधन के प्रणेता ब्रह्मर्षि विश्वामित्र की महनीयता पर प्रकाश न डाले बिना यह लघु-निबन्ध अधूरा रह जायेगा - जरूर।

चंद्र-वंश्य के आरंभिक परंपरा में राजा कुशांबु एक वंशकर्त्ता था। गाधिराजा उसका पुत्र था। विश्वामित्र महर्षि इस गाधिराजा का ही पुत्र था। सुक्षत्रिय वंश में, अग्नि-तेज लिए विश्वामित्र-जनम लेकर, तपोध्यान के द्वारा राज-धर्म त्याग कर, ब्रह्मर्षि बन कर - ब्राह्मण-धर्म के अवलंबी बना था। सक्षम ब्राह्मण-तेज के साथ ब्रह्मर्षि विश्वामित्र, ब्रह्म-पथ में महान् उदाहरण-पात्र बन कर विराजमान हुआ था!!

यह महर्षि महानुभाव महान् मानवता-प्रेमी है। उसने राजा हरिश्चंद्र के यज्ञ में बलि-पशु के तौर पर लिए जाते हुए ''शुनश्शेप'' नामक ब्राह्मण-बालक की राज-भटों से रक्षा कर, उसे अपना पुत्र स्वीकार किया!!

विश्वामित्र का उपदेशित जीवन-ज्ञान

विश्वामित्र महर्षि के सौ से अधिक पुत्र थे। 'महोदय' नाम के राज्य का वह राजा था। उसने अपने हयाम के भारी जीवन के स्वरूप का दर्शन किया था। वह सृष्टिकर्त्ता ब्रह्म के बाद ब्रह्म था। सृष्टि की प्रति-सृष्टि की थी। उसके नाम पर 'विश्वामित्र-पंथ' नामक एक पंथ चलता है। विश्वामित्र के दिखाये जीवन-दार्शनिक-सूत्र कुछ इस प्रकार हैं-

''मन अन्नमय है। भूमि अन्न-रूपी है। अतएव अन्न-रूपी भूमि की मन में ही वंदना करनी चाहिए। भूमि को जल से दबाना चाहिए। जल को तेजस से सुखाना चाहिए। तेजस को वायु से गायब करना चाहिए।

वायु को आकाश में मिलाना चाहिए।

आसमाँ को तामस, अहंकारों में लय करो!

अहंकार-त्रय को (मैं, हम, आप) महतत्त्व में सुखाना चाहिए।''

समापन

कहा गया है -

नान्नोदकं समं दानं न द्वादश्या परमं व्रतम्।

न गायत्र्या परमं मंत्रं न मातुः पर-दैवतम्।।

जलदान के समान का दान, द्वादशी-व्रत-सरीखा व्रत, गायत्री-मंत्र के समान वाला मंत्र और माँ से बढ़ कर कोई देवता नहीं!!

अतः सब साधक गायत्री महामंत्र का अनुष्ठान करें!!

श्री यामुनाचार्य स्वामीजी
(आळवंदार)

- श्रीमती उषादेवी अगर्वाल
मोबाइल - ९९०३३८८००५

तिरुनक्षत्र : दक्षिणात्य आषाढ मास का उत्तराषाढा नक्षत्र

अवतार स्थल : काट्टुमन्नार कोविल

आचार्य : मणक्काल नंबि (श्रीराममिश्र स्वामीजी)

शिष्यगण : पेरियनंबि (महापूर्ण स्वामीजी), पेरिय तिरुमलैनंबि (श्रीशैलपूर्ण स्वामीजी), तिरुकोष्टियूर नंबि (श्रीगोष्ठिपूर्ण स्वामीजी), तिरुमालै आण्डान (श्रीमालाधर स्वामीजी), दैववारि आण्डान, वानमामलै आण्डान, ईश्वर आण्डान, जीयर आण्डान, आळवंदार आळ्वान, तिरुमोगूर अप्पन, तिरुमोगूर, निन्नार, देवापेरुमाळ, मारानेरीनंबि, तिरुकच्चिनंबि (श्रीकांचीपूर्ण स्वामीजी), तिरुवरंग पेरुमाळ् अरयर्, (मणक्काल नंबि के शिष्य और आळवंदार के पुत्र), तिरुकुरुगूर दासर्, वकुलाभरण सोमयाजियार, अम्मंगि, आळ्कोण्दि, गोविंद दासर (जिनका जन्म मदुरई में हुआ), नाथमुनि दासर (राजा के पुरोहित), तिरुवरंगतम्मान् (महारानी)।

ग्रंथ : चतुश्लोकी (श्रीवरदवल्लभा स्तोत्र), स्तोत्र रत्न, सिद्धि त्रयं, आगम प्रमान्यम और गीतार्थ संग्रह। इनका परमपद तिरुवरंगम में हुआ।

यमुनैतुरैवर (यामुनाचार्य) का जन्म श्रीनाथमुनि स्वामीजी के पुत्र ईश्वरमुनी के यहाँ दक्षिणात्य आषाढ़ मास के उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में काट्टुमन्नार कोविल, वीरनारायणपुरम, वर्तमान मन्नार गुडी गाँव में हुआ। इन्हें पेरिय मुदलियार, परमाचार्य, सिम्हेन्द्रर इत्यादि नामों से भी जाना जाता हैं लेकिन अंततः 'आळवंदार' के नाम से प्रसिद्धि हुये।

श्री आळवन्दार ने अपना विद्याध्ययन, अपनी प्रारंभिक शिक्षा श्रीमहाभाष्यभट्टर से प्राप्त किये थे।

यामुनाचार्यजी के जीवन की कुछ प्रसिद्ध घटनाये इस तरह है -

उस समय के राजा (कुछ जगह चोलवंश का उल्लेख है तो कुछ जगह पंड्या राजवंश को, पर इतिहास उस समय चोल राजवंश की चर्चा करता है।) राजदरबार के विद्वान पंडित, राज पुरोहित अक्किआळवान थे। उनका स्वभाव थे उनसे शास्त्रार्थ में जो हार जाता था उसी से मनमाना लगान वसूल करते थे। अपने इसी स्वभाव वश वह राज्य के सारे पंडितों को लगान देने का आदेश दे देते है। इसे सुनकर महाभाष्य भट्टर चिंतित हो जाते हैं। उनकी चिंता देख यमुनैतुरैवर उन्हें आश्वासन देते हैं कि वह किसी भी तरह से उन परिस्थितियों का सामना करेंगे। यामुनाचार्यजी की अवस्था उस समय लगभग १२ वर्ष थी, इस राजादेश के प्रति उत्तर (समाधान) में उन्हें एक श्लोक भेजते हैं, जिसमें वह स्पष्ट रूप से कहते है, वह उन सब कवियों का जो अपना स्वप्रचार कर अन्य विद्वानों पर अत्याचार करते है, उनका नाश करेंगे। राजा यमुनैतुरैवर को राजदरबार में हाजिर होने का आदेश अपने सिपाहियों के हाथ भिजवाते है। यमुनैतुरैवर उन्हें (सिपाहियों को) तिरस्कार कर कहते हैं, उन्हें बुलाने के लिए उचित सम्मान और गौरव से बुलावा भेजेंगे तो दरबार में उपस्थित होंगे। यह सुनकर राजा यमुनैतुरैवर को ससम्मान पालकी भेजकर दरबार में बुलवाते है। यमुनैतुरैवर उसमें आसित हुए राजा के दरबार पहुँचते हैं।

राजदरबार में यमुनैतुरैवर के तेज और ओज को देख, महारानी राजा से कहती है की, उसे विश्वास है की यह ओजस्वी बालक ही शास्त्रार्थ में विजयी होगा और शर्त लगाती

है की अगर बालक हार गया तो वह महल में दासी की तरह रहेगी, इस पर राजा महारानी को वचन देता है की, अक्किआळ्वान हार जायेगा तो बालक को आधा राज्य दे देंगे।

अक्किआळ्वान अपने शास्त्रार्थ में निपुणता और हुनर के आधार पर गर्वित होकर यमुनैतुरैवर से कहते है की वह इस शास्त्रार्थ में उनके प्रश्नों को सकारात्मक समाधान करेंगे, यह सुन यमुनैतुरैवर तीन प्रश्न पूछते है। जो इस प्रकार है -

पहला - आप (अक्किआळ्वान) के माताजी बंध्या (बाँझ) स्त्री नहीं है।

दूसरा - हमारे राजा धार्मिक पुण्यवान है, हमारे राजा समर्थ (काबिल/योग्य/सक्षम) है।

तीसरा - राजा की पत्नी (महारानी) पतिव्रता स्त्री है।

यह प्रश्न कर यमुनैतुरैवर ने कहा अब इन तीनों का खण्डन अपने शास्त्रार्थ के नैपुण्य से करिये।

यह तीन प्रश्न सुनकर अक्किआळ्वान दंग रह गए। वह एक भी प्रश्न का खण्डन नही कर पाए क्योंकि, इन प्रश्नों का खंडन स्वयं की माता को बाँझ बताना, राजा को अधर्मी बतलाना और महारानी के पातिव्रत्य पर आक्षेप लगाना होता। वह ऐसे असमंजस में पड गए की अगर वह जवाब दे तो राजा बुरा मान जायेंगे और अगर इसका समाधान नही (खण्डन) करें तो भी राजा बुरा मानेंगे क्योंकि वह एक बालक से हार गए। इसी विपरीत चिंतित अवस्था में वह यमुनैतुरैवर से अपनी पराजय स्वीकार कर लेते है। यमुनैतुरैवर को ही इन प्रश्नों का खंडन कर समाधान करने की बात कहते है। इसके उत्तर में यमुनैतुरैवर कुछ इस प्रकार कहते है।

पहला - शास्त्रों के अनुसार वह माँ बाँझ (निस्संतान) होती है जिसका एक ही पुत्र/पुत्री हो (आप अपनी माँ की एकलौती संतान हो, अतः आपकी माँ एक बाँझ (निस्संतान) स्त्री है)।

दूसरा - शास्त्रों में बतलाया है की, प्रजा के पाप-पुण्य में राजा का भी भाग होता है, ऐसे में प्रजा के पाप का भागी होने से पुण्यवान नहीं कहलाता। हमारे राजा बिलकुल भी काबिल/समर्थ नही है क्योंकि वह केवल अपने राज्य का ही शासन करते है पूरे साम्राज्य के अधिपति नही है।

तीसरा - शास्त्रों के अनुसार राजा में अन्य देव भी विद्यमान रहते है, विवाह के समय कन्या को पहले वेद मंत्रों से देवताओं को अर्पित करते है। इस कारण रानी को पवित्र नही मानते है।

अक्किआळ्वान यमुनैतुरैवर के सक्षम और आधिपत्य को स्वीकार करते हुए अपने आप को यमुनैतुरैवर से पराजित मानकर उनके शिष्य बन जाते है। यहाँ यमुनैतुरैवर शास्त्रों के आधार पर दिव्य स्पष्टीकरण से विशिष्टाद्वैत सिद्धांत की स्थापना करते है। महारानी उन्हें 'आळवंदार' नाम से संबोधित करती हैं (जिसका मतलब हैं की वह जो उनकी रक्षा करने, सब पर विजय पाने के लिए आये हैं) और उनकी शिष्या बन जाती हैं। राजा महारानी को दिए वचन अनुसार यामुनाचार्यजी को अपना आधा राज्य दे देता है।

श्रीराममिश्र स्वामीजी के परिचय में हमने जाना की कैसे, श्रीराममिश्र स्वामीजी यामुनाचार्यजी को आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करवाते हैं, और उन्हें अपने संप्रदाय का दर्शन प्रवर्तक बनाने के लिए श्रीरंगम ले आते हैं।

श्रीरंगम पहुँचने के पश्चात, सन्यास दीक्षा ग्रहण करते है, और संप्रदाय के प्रचार में जुट जाते हैं, इस दरमियान यामुनाचार्यजी के अनेक वैष्णव शिष्य बनते हैं।

श्रीराममिश्र स्वामीजी यामुनाचार्यजी को बतलाते है की वे कुरुगै कावलप्पण् स्वामी से अष्टांग योग का रहस्य सीखे। जब यामुनाचार्यजी, कुरुगै कावलप्पण् स्वामी से मिलने पहुँचते हैं, तब कुरुगै कावलप्पण् स्वामी योग में भगवद् अनुभव में मग्न रहते हैं। पर उन्हें यामुनाचार्यजी के आगमन का आभास हो जाता है, कुरुगै कावलप्पण् यामुनाचार्यजी से कहते हैं की उन्हें आभास हुआ की एम्पेरुमान उनके कंधों के ऊपर से आळवंदार को देखने की कोशिश कर रहे है, जिससे उन्हें पता चल गया की श्रीनाथमुनि के वंशज कोई आये हैं। (क्योंकि नाथमुनि का वंश एम्पेरुमान को अत्यंत प्रिय हैं इसी लिये उत्सुकतावश उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे)।

वे उन्हें अष्टांग योग रहस्य सीखने के लिए अपने परमपद प्रस्थान के कुछ समय पहले एक उपाय बतलाते है। पर यामुनाचार्यजी उस उपाय को भूलकर तिरुअनंतपुरम यात्रा पर चले जाते है। बाद में इस बात का उन्हें एहसास होता है की कुरुगै कावलप्पण् से योगरहस्य सीखने में देरी हो गई।

जब यामुनाचार्यजी तिरुअनंतपुरम दर्शन की यात्रा पर गए तब उनके एक शिष्य दैवावारी आण्डान्, आचार्य से वियोग सहन नहीं कर पाने के कारण, वे तिरुअनंतपुरम की ओर प्रस्थान करते हैं और उसी समय आळवंदार तिरुअनंतपुरम से श्रीरंगम के लिए प्रस्थान करते हैं। उन दोनों की मुलाकात तिरुअनंतपुरम के मुख्य द्वार पर हो जाती है। दैवावारी आण्डान अपने आचार्य को देखकर बहुत खुश होते हैं और उनके साथ ही श्रीरंगम लौटने का फैसला करते हैं। आळवंदार उनसे अनंतशयन एम्पेरुमान के दर्शन कर आने के लिए कहते है, तब जवाब देते हैं की मेरे लिए एम्पेरुमान से भी अधिक आळवंदार हैं। ऐसे विशेष आचार्य निष्ठ थे।

श्रीरंगम वापस लौट आने पर, उन्हें श्रीवैष्णव संप्रदाय के अगले उत्तराधिकारी की नियुक्त करने की चिंता घेर लेती हैं। इसी दौरान, यामुनाचार्यजी को इळयाळवार (श्रीरामानुज स्वामी) के बारे में जानकारी मिलती हैं जो कांचिपुरी में यादव प्रकाशर के पास शिक्षा अभ्यास कर रहे थे। वे कांचीपुरी पहुँच जाते हैं और श्रीवरदराज भगवान कोविल में करुमाणिक्क पेरुमाळ् सन्निधि के सामने अपना दिव्य अनुग्रह इळयाळवार पर बरसाते हैं, जो उस समय सन्निधि के सामने से गुजर रहे थे। आळवंदार श्रीवरदराज भगवान के सन्निधि पहुँचते हैं और एम्पेरुमान को प्रार्थना करते है की रामानुजजी को शरणागति प्रदान करे इळयाळवार को संप्रदाय के अगला उत्तराधिकारी नियुक्त किया जाये। इस प्रकार आळवंदार ने एम्पेरुमानार दर्शन के बीज बोये जो एक महा वृक्ष के रूप में परिवर्तित होने वाले थे। वे तिरुक्कच्चिनंबि से विनती करते हैं की इळयाळवार की आध्यात्मिक प्रगति में उन्हें सहायता करे।

काल के अंतराल में आळवंदार बहुत रुग्ण हो जाते हैं और अपने सभी शिष्यों को तिरुवरंग पेरुमाळ् अरयर् पर निर्भर रहने की बात बतलाते है। अपने अंतिम समय में श्रीवैष्णवों के लिए कुछ उपदेश देते है उनमें कुछ इस प्रकार है-

१) श्रीवैष्णवों के लिए दिव्यदेश (दिव्यस्थल) ही प्राण है इस दृढ़ विश्वास के साथ सदैव इन दिव्य क्षेत्रों में भगवद्-भागवत कैंकर्य करते रहे।

२) श्रीवैष्णवों के लिए तिरुप्पाणाळ्वार के बतलाये अनुसार, भगवान तिरुवरंग सदैव पूजनीय है और उनकी पूजा/सेवा, दर्शन उनके तिरुवडी (चरणारविंद) से शुरू कर तिरुमुडि (शीश) तक करनी चाहिये क्योंकि तिरुप्पाणाळ्वार भगवान के चरणकमलों में सदैव रहते है (जिन्होंने भगवान के श्री चरणकमलों का आश्रय लिया है)। श्री आळवंदार कहते है की उनके विचार में तिरुप्पणाळ्वार (जिन्होंने पेरिय पेरुमाळ का गुणगान किया है), कुरुम्बरुतनंबि (जिन्होंने मिट्टि के फूल पेरियपेरुमाळ को समर्पित किया), तिरुक्कच्चिनंबि (जिन्होंने भगवान देवपेरुमाळ की पंखा झलने की सेवा की) सदैव समान है और उनकी तुलना कदाचित नही कर सकते क्योंकि हर एक अपने भगवद्कैंकर्य में उत्कृष्ट थे।

३) श्री आळवंदार कहते है की एक प्रपन्न को कदाचित भी अपनी आत्मयात्रा या देहयात्रा का चिंतन नही करना चाहिये क्योंकि आत्मा भगवान के आधीन है अतः भगवान खुद इसकी देखभाल करेंगे और देह जो पूर्वकर्मानुसार प्राप्त है वह (देह) हमारे पाप / पुण्य के अनुसार चालित है। अतः हमें किसी के बारे में चिंतित होने की आवश्यकता नही है।

४) भागवतों में कदाचित तुलना नही करना चाहिये क्योंकि हर एक श्रीवैष्णव भगवान के तुल्य है।

५) जैसे एम्पेरुमान के श्री चरणकमलों का अमृत (चरणामृत) स्वीकार करते हैं, उसी गौरव और प्रेम से आचार्य का श्रीपादतीर्थ लेना चाहिये।

६) जब हम (आचार्य) श्रीपादतीर्थ को दूसरों को दे रहे हो, तब हमें गुरुपरम्परा की ओर वाक्य गुरुपरम्परा/ द्वय महा मंत्र का अनुसंधान करते हुए देना चाहिये।

अंत में वे उनके सारे शिष्यों को उनके सामने उपस्थित होने के लिए कहते हैं। उनसे क्षमा प्रार्थना माँगते हैं, उनसे श्रीपादतीर्थ ग्रहण करते है, उनको तदियाराधन करवाते है और चरम तिरुमेनी (शरीर) छोडकर परमपद को प्रस्थान करते हैं।

सभी शिष्यगण दुःख के सागर में डूब जाते हैं और उनकी अंतिम यात्रा उत्सव मनाने की तैयारी आरंभ करते हैं।

जब एक श्रीवैष्णव अपनी भौतिक काया को छोड़कर परमपद चले जाते हैं, तब उनका परमपद में अत्यंत गौरव और सम्मान के साथ स्वागत किया जाता हैं इसे ध्यान में रखते हुए यह कार्य अत्यंत समारोह पूर्वक से मनाया जाता हैं। सभी चरम कैंकर्य जैसे तिरुमंजनम्, श्री चूर्ण धारणा, अलंकरण, ब्रह्म रथ विस्तार से आळवंदार चरित्र में और अन्य आचार्यों के चरित्र में भी समझाया गया हैं।

अपने अंतिम समय के पहले, आलवंदार स्वामी अपने प्रिय शिष्य पेरियनंबि (श्रीमहापूर्ण स्वामीजी) को श्रीरामानुज स्वामीजी को लाने कांचीपुरम भेजते है। श्रीरामानुज स्वामीजी श्रीवरदराज भगवान की तिरुवाराधन में जल कैंकर्य के लिए सालै किनार (कुँए) पहुँचते हैं। उन्हें देखकर पेरियनंबि आळवंदार स्वामी द्वारा रचित स्तोत्र रत्न का पठन ऊँचे स्वर में करते हैं ताकि श्रीरामानुज स्वामीजी को सुनाई दे। श्लोक सुनकर, श्लोक को अर्थ पूरित ग्रहण करके श्रीरामानुज स्वामीजी महापूर्ण स्वामीजी को, उनके लेखक के बारे में पूछते हैं। तब पेरियनंबि उन्हें आळवंदार की विशिष्टता/उत्कर्षता बता कर उन्हें श्रीरंगम आमंत्रित करते हैं। उनका आमंत्रण स्वीकार करके श्रीरामानुज स्वामीजी श्रीवरदराज भगवान और तिरुक्कच्चिनंबि की अनुमति लेकर श्रीरंगम पहुँचते है। श्रीरंगम पहुँचने पर, रास्ते में आळवंदार स्वामी की तिरुमेनि का अंतिम यात्रा का देखकर, पेरियनंबि दुखित हो रोते हुए, नीचे गिर जाते हैं और श्रीरामानुज स्वामीजी भी यह सब देख दुःखी हो जाते हैं। वहाँ उपस्थित लोगों से घटित घटना की जानकारी प्राप्त करते हैं।

समाधी स्थल पर आळवंदार स्वामी के अंतिम कैंकर्य को आरंभ किया जा रहा था, तब सब लोग ने उनके एक हाथ की ३ उंगलिया मुड़ी हुयी (बंद) देख अचंभित होते हैं। श्रीरामानुज स्वामीजी भी यह देख उपस्थित शिष्य और वैष्णव समूह से चर्चा कर इसका कारण जानने का प्रयास करते है, सबकी सुन इस निर्णय पर पहुँचते है की आलवंदार स्वामी की ३ इच्छाएँ अपूर्ण रह गयी, वे इच्छाएँ इस प्रकार थी –

१) व्यास और पराशर ऋषियों के प्रति सम्मान व्यक्त करना।

२) नम्माल्वार के प्रति अपना प्रेम बढ़ाना।

३) विशिष्टाद्वैत सिद्धांत के अनुसार व्यास के ब्रह्म सूत्र पर श्रीभाष्य की रचना करना (विश्लेष से विचार/चर्चा करना) लिखना।

तब श्रीरामानुज स्वामीजी प्रण लेते है की, आलवंदार स्वामी के यह ३ इच्छाएँ वह पूर्ण करेंगे, श्रीरामानुज स्वामीजी के प्रण लेते ही आळवंदार स्वामी की तीनों उंगलिया सीधी हो जाती हैं। यह देखकर वहाँ एकत्रित सभी वैष्णव, और आलवंदार स्वामी के शिष्य अंचभित हो खुश हो जाते हैं और श्रीरामानुज स्वामीजी की प्रशंसा करते हैं। आळवंदार स्वामी की परिपूर्ण दया, कृपा कटाक्ष और शक्ति उन पर प्रवाहित होती हैं। उन्हें श्रीवैष्णव संप्रदाय दर्शन के उत्तराधिकारी पद पर प्रवर्तक/ निरवाहक चुन लिये जाते हैं। श्रीरामानुज स्वामीजी को आळवंदार स्वामी का दर्शन का सौभाग्य प्राप्त न होने का बहुत क्षोभ हुआ, वे दुखित मन से सब कैंकर्य पूर्ण करके, बिना पेरिय पेरुमाळ् के दर्शन किये कांचिपुरी लौट जाते हैं। आळवंदार स्वामी के रचित ग्रंथ उनके उभय वेदांत के महा ज्ञानी होने का आभास करवाते है।

१) श्रीवरदवल्लभा स्तोत्र में केवल ४ श्लोकों में पेरिया पिराट्टि वैभव का मूल तत्त्व समझाते हैं।

२) वास्तव में स्तोत्ररत्न एक अनमोल रत्न है और इसी रत्न में श्री आळवंदार शरणागति की अवधारणा पूर्ण रूप से सरल श्लोकों में प्रस्तुत करते है।

३) गीतार्थसंग्रह में श्री आळवंदार श्री भगवद्गीता का सारांश समझाते है।

४) आगम प्रमान्यम पहला ग्रंथ हैं जिसमें श्रीपांचरात्र आगम का महत्व और वैधता पर प्रकाश डाला गया हैं।

आळवंदार (श्री यामुनाचार्य स्वामीजी) की तनियन

यत् पदाम्भोरुहध्यान विध्वस्ताशेश कल्मषः।
वस्तुतामुपयातोऽहम् यामुनेयम् नमामितम्।।

ॐ कमण्डलु हस्ताय विद्महे
सूक्ष्म देहाय दीमही
तन्नो वामन प्रचोदयात्।।

अवतार का महत्व

धर्म की रक्षा और अधर्म का अंत करने के लिए जब भगवान मानव या कोई अन्य जीव के रूप में धरातल में आते हैं, उसी को अवतार कहते हैं। भगवान विष्णु के दस अवतारों में हम इसी तत्त्व को ही पाते हैं। इन सारे अवतारों में वामन अवतार जो पाँचवाँ अवतार है, उसका अपना अलग महत्व है। उनके अन्य अवतारों में श्रीविष्णु को धर्म की रक्षा के लिए असुरों का वध करते हुए पाते हैं। लेकिन इस वामन अवतार में श्रीविष्णु कोई वध न करके असुरेश बलि के दंभ को दूर करके उस पर अपनी दया वर्षा करते पाते हैं। इस अवतार के द्वारा भगवान हमें यही समझाते हैं कि दंभ और अहंकार से जीवन में कुछ हासिल नहीं होता और यह भी कि धन संपदा क्षणभंगुर होती है। इसलिए मनुष्य को इस पर कभी भी घमंड करना नहीं चाहिए।

विक्रजीत यज्ञ

एक बार असुरेश बलि इन्द्र के साथ किये कठोर युद्ध में हार जाता है। फिर भी उसके मन में इंद्र को हराकर इंद्रलोक को अपने कब्जे में लाने का विचार कम नहीं होता। इसके लिए वह अपनी असुर सेना का बल बढाने लगता है और बृहु वंश के दैत्य गुरु शुक्राचार्य से उपाय माँगता है। आखिर गुरु के उपदेश पर स्वर्ग लोक को अपने अधीन में लाने के लिए विक्रजीत नामक यज्ञ करता है।

विजय का झंडा

यज्ञ के अंत में धनुष, बाण भरा तरकश और अभेद्य कवच् के साथ एक दिव्य रथ प्रकट होता है। गुरु शुक्राचार्य से आशीर्वाद

सम्पत्ति से बडा है स्वामी

- श्री के.रामनाथन
मोबाइल - ९४४३३२२२०२

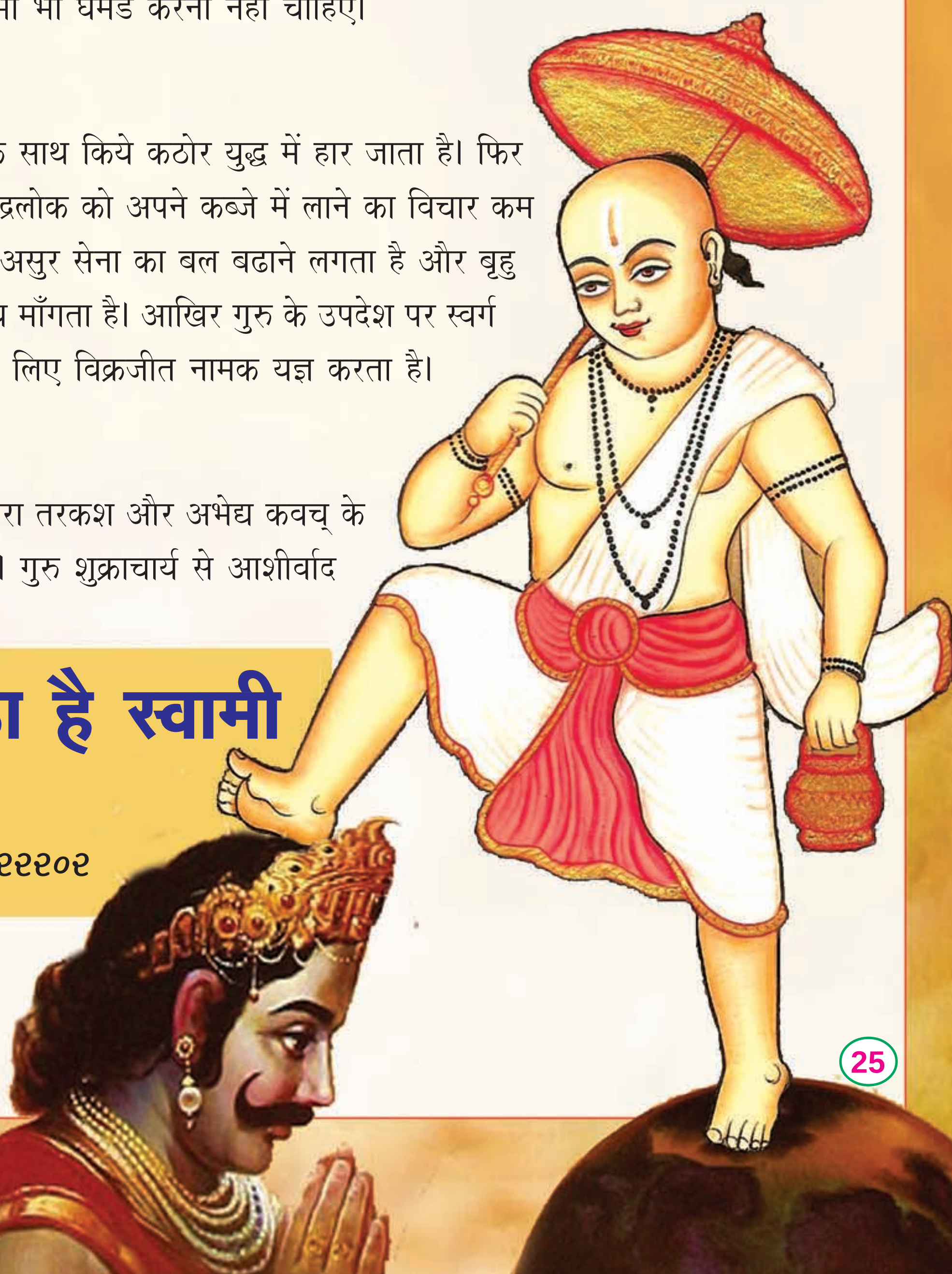

लेकर वह अपनी शक्तिशाली सेना के साथ दिव्य रथ में बैठकर स्वर्गलोक पर हमला करने निकल पडता है। उसे जीतकर वह इंद्रलोक पर आक्रमण करने आता है। उसके अत्यधिक बल एवं तेज से भयभीत इन्द्र और अन्य देवगण कहीं जाकर छिप जाते हैं। इसलिए अब असुरेश बलि वहाँ भी अपनी विजय का झंडा फहरा देता है।

वामन का अवतार

देवगण ऋषि कश्यप और अदिति के पुत्र हैं। अपने पुत्रों की दुर्दशा को देखकर माता अदिति एकदम उदास हो जाती है। वह अपने दुःख को दूर करने के लिए भगवान विष्णु से प्रार्थना करती है। उसकी प्रार्थना पर खुश होकर श्रीविष्णु उसके सामने प्रकट होते हैं, और कहते हैं, मैं तुम्हारे पुत्र के रूप में जन्म लेकर तुम्हारे दुःख को दूर करूँगा। उनके इस वरदान के अनुसार श्रीविष्णु बौने ब्राह्मण के रूप में 'वामन' के नाम से जनम लेते हैं।

मासी भाद्रपते शुक्ल
द्वातस्याम् वामनो विपुः
अतित्याम् कस्यपाज्
जग्नो नियन्तुम् बलिमोजासा।।

इस दशा में असुरेश बलि सभा लोकों में अपने शासन को स्थायी बनाने का विचार करता है। गुरु शुक्राचार्य के उपाय पर अश्वमेध यज्ञ का प्रारंभ करता है। उस यज्ञ की पूर्ति पर असुरेश बलि को अत्यधिक बल की प्राप्ति होगी और देवगणों की रक्षा का कार्य असंभव बन जायेगा। यह जानकर वामन रूपी श्रीविष्णु छत्र, पलाश, दण्ड, कमण्डल लिए जटाधारी और तेज तपस्वी ब्राह्मण रूप में यज्ञशाला में प्रवेश करते हैं।

सम्पत्ति से बडा है स्वामी

तेजस्वी वामन को देखकर असुरेश बलि, शुक्राचार्य, ऋषिगण सभी एक साथ उनका स्वागत सत्कार करते हैं। असुरेश बलि उनका चरण छूकर नमस्कार करता है और कहता है कि जो भी इच्छा हो माँग ले। यह सुनकर वामन कहते हैं कि मुझे अपने पैरों से तीन कदम भूमि चाहिए। यह सुनकर असुरेश बलि और कुछ माँगने के लिए उनको कहते है। परंतु वामन तो अपनी माँग पर स्थिर रहते हैं। तब तक आचार्य शुक्र ताड लेते हैं कि वामन के रूप में भगवान विष्णु आये हैं। इसलिये वे असुरेश बलि को सावधान करते हैं। वे समझाते हैं कि तुम्हारे ऐसे कार्य से नाश तुम्हारा ही नहीं तुम पर आश्रित असुरों का भी होगा। सब सुनकर भी असुरेश बलि सम्पत्ति का स्वामी सम्पत्ति से बडा है, ऐसा कहकर वह अपने वादे से हटने को तैयार नहीं होता।

सुतल का नरेश

असुरेश बलि जब भूमिदान का संकल्प लेकर वामन से माँगने को कहता है, तब वामन रूपी श्रीविष्णु अपना विराट रूप धारण कर लेते हैं। वे अपने एक कदम में भूमि को और दूसरे कदम में समस्त नभ को नाप देते हैं। फिर वे असुरेश को देखकर पूछते हैं कि तीसरा कदम कहाँ रखा जाए। धर्मपरायण एवं वचनबद्ध असुरेश बलि तुरंत कहता है कि मेरे मस्तक पर रख ले। भगवान ऐसे ही करके सभी ऐश्वर्यों के साथ उसे सुतल लोक में पहुँचा देते हैं। फिर यज्ञ को गुरु शुक्राचार्य द्वारा पूर्ण कराते हैं।

श्री हयग्रीव जयंती

०३-०८-२०२०

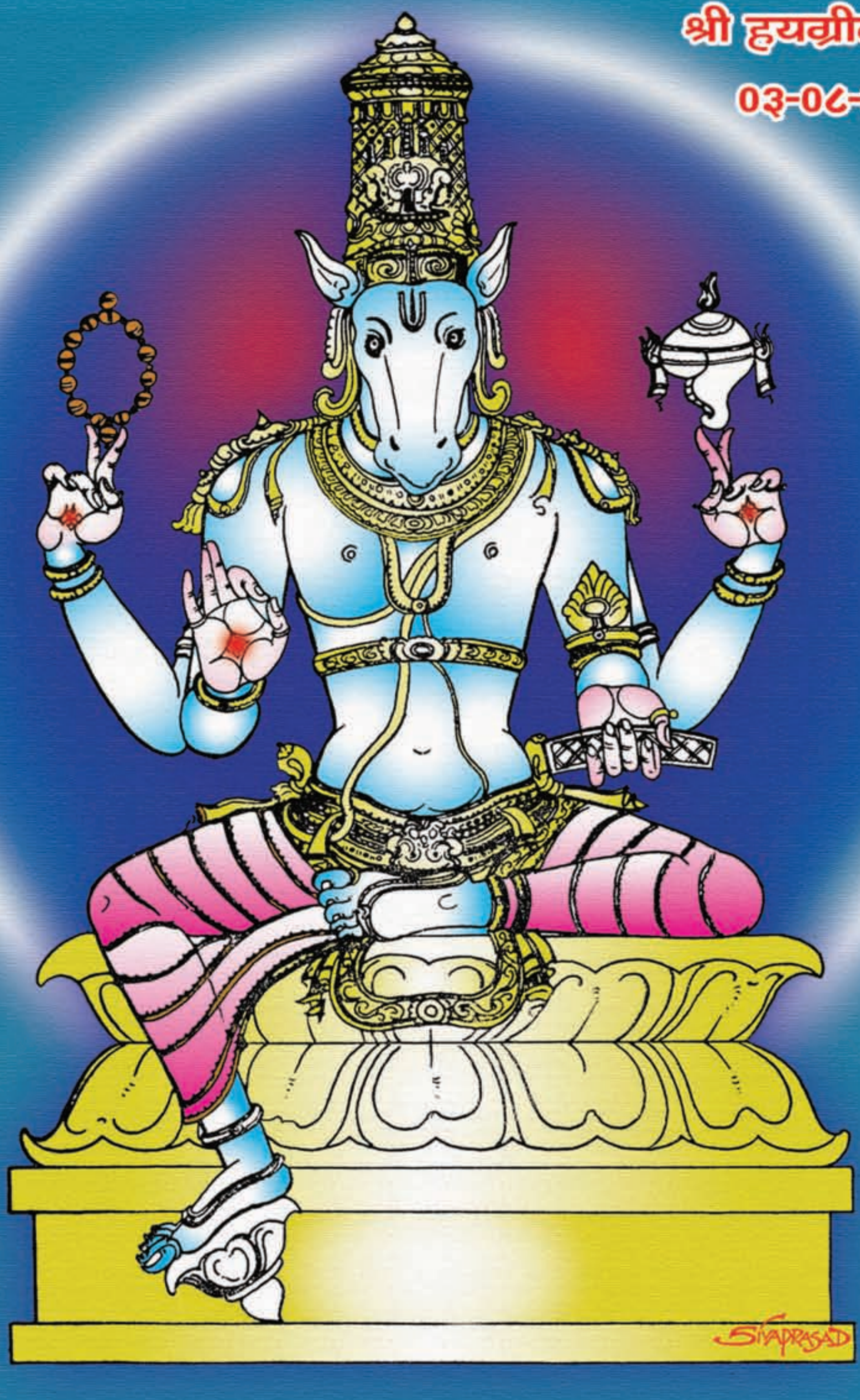

विशुद्धविज्ञानघनस्वरूपं विज्ञान विश्राणन बद्धदीक्षम्
दयानिधिं देहभृतां शरण्यं देवं हयग्रीवमहं प्रपद्ये

निर्मल-रूपी विज्ञान ही को अपना स्वरूप के तौर पर पाये हुए,
ऐसे विज्ञान को अनुगृहीत करनेवाले दीक्षा धारी, दया के निधि,
प्राणियों के लिए बड़ी शरण बनने वाले श्री हयग्रीव स्वामी की शरण लें!

श्री वेदांतदेशिक - हयग्रीव स्तोत्र - ५

तिरुमल श्री बालाजी के मंदिर में शास्त्रोक्त के तौर पर पवित्रोत्सव कार्यक्रम संपन्न हुआ। इसके अंतर्गत श्रीश्रीश्री छोटे जीयंगार स्वामीजी, पत्नी सहित ति.ति.दे. न्यास-मंडली के अध्यक्ष श्री वाई.वी.सुब्बारेड्डी, ति.ति.दे. कार्यनिर्वहणाधिकारी श्री अनिल कुमार सिंघाल, आई.ए.एस., पत्नी सहित अतिरिक्त कार्यनिर्वहणाधिकारी श्री ए.वी.धर्मारेड्डी और अन्य उन्नताधिकारी गणों ने भाग लिया।

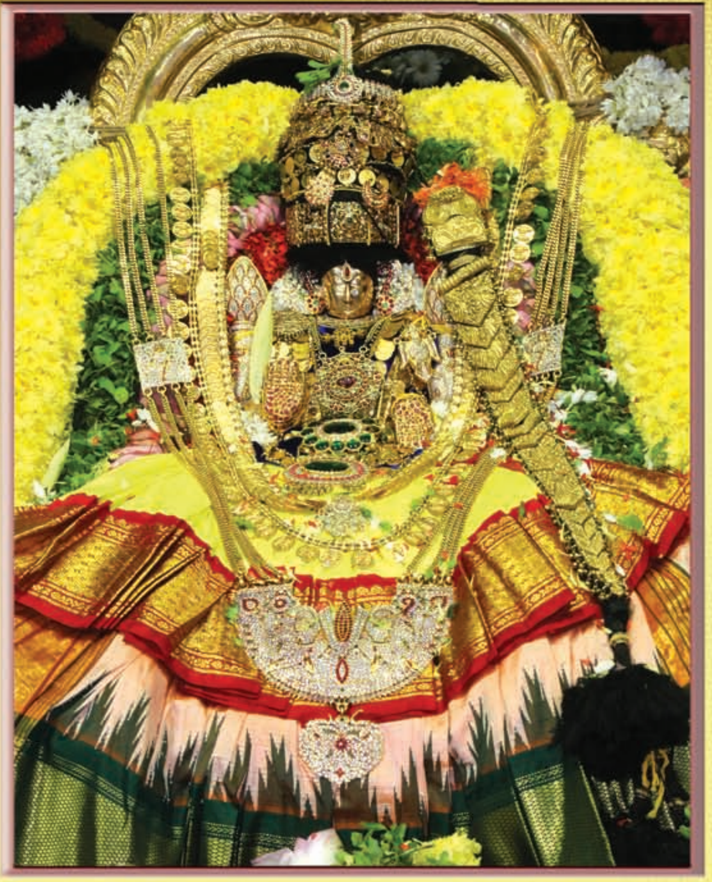

तिरुचानूर श्री पद्मावतीदेवी के मंदिर में

शास्त्रोक्त के तौर पर श्री वरलक्ष्मी व्रत संपन्न किया गया था।

इस संदर्भ में अपनी-अपनी पत्नियों समेत ति.ति.दे. न्यास-मंडली के अध्यक्ष

श्री वाई.वी.सुब्बारेड्डी, ति.ति.दे. कार्यनिर्वहणाधिकारी श्री अनिल कुमार सिंघाल, आई.ए.एस.,

संयुक्त कार्यनिर्वहणाधिकारी श्री पी.बसंत् कुमार, आई.ए.एस., और

अन्य उन्नताधिकारी गणों ने भाग लिया।

तिरुपति श्री कोदंडरामस्वामी के मंदिर में शास्त्रोक्त के तौर पर संपन्न पवित्रोत्सव के दृश्य।

तिरुचानूर श्री पद्मावती देवी के मंदिर में श्री वरलक्ष्मी व्रत के अवसर पर ऑनलाइन में टिकट बुकिंग भक्तों को डाकघर विभाग से प्रसादों का वितरण ति.ति.दे. ने किया।

विनायक चतुर्थि की महत्ता

- डॉ.टी.प्रभ्नारानी
मोबाइल - ९९५१२२९२०७

✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲

हमारा देश का नाम है भारत। हम इस भारत देश में रहे है। हम हिन्दू लोग कहलाते है। हिन्दुओं के हैंदव सिद्धांत के अनुसार हम विविध संदर्भों में अनेक त्यौहार मनाते है। उनमें एक है विनायक चतुर्थि। इस त्यौहार को हम हर साल भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष के चविति का दिन मनाते है। विनायक चविति की महत्ता यह है कि इस दिन भगवान श्री गणेश के जन्म दिन है।

पूर्वकाल में एक बार माता पार्वती देवी ने माव से एक मूर्ति को बनाया और उस मूर्ति को प्राण देकर उसे उन की द्वार पर खडे होने की आज्ञा देकर वह स्नान के लिए अंदर गयी। किसी को भी अंदर न जाने देने की आज्ञापित करके स्नान के लिए अंदर चली गयी।

उस समय गणेश (विनायक) द्वार के पास खडा हुआ था। तब भगवान शिव आकर अंदर जाने का प्रयत्न किया। लेकिन शिवजी को उस बालक अंदर न जाने दिया। बालक के उस बर्ताव पर नाराज होकर भगवान शिव ने उस बालक को मार डाला। फिर माता पार्वती देवी से उस बालक की कथा सुनकर उस बालक फिर जीवित करने के लिए सिद्ध हुआ। उन्होंने अपने अनुचर गण को इस आज्ञा दी कि कोई व्यक्ति या कोई प्राणी उत्तर दिशा में सिर रखकर सोते को देखेगा। उस प्राणि का सिर काट कर लाना चाहिए। भगवान शिव की यह आज्ञा पाकर उन के अनुचर गण उत्तर दिशा में सिर रखकर सोने वाले हाथी के सिर को काटकर आगये। उस हाथि के सिर को उस मृत बालक के सिर के स्थान में उस गजराज के सिर को रखकर अनुसंधान किये और पुनर्जीवित बनाये। उस बालक की माता पार्वती को खुश रखने के लिए उसे 'गजानन' का नाम रखा भगवान शिव ने।

इस गणेश की और एक महत्तर कथा जन बाहुल्य में प्रचारित हुयी। एक बार पार्वती देवी और भगवान शिव ने अपने पुत्र विनायक और स्कंद के बीच में एक बार परीक्षा करने के लिए सिद्ध हुये। उस समय स्कंध (सुब्रह्मण्य) ने अपने मयूर वाहन पर तीन लोकों का दर्शन करके आने के लिए कैलाश से निकला। तब भगवान गणेश बलहीन होने के कारण अपनी माता-पिता को तीन बार प्रदक्षिण करके उन के सामने प्रणाम किये। भगवान स्कंध तीनों लोकों का दर्शन करके लौट आते समय अपना भाई उस से पहले अपनी माता और पिता के पास खडे होने को देखा और अपना हार को मान लिया। इस से भगवान विनायक

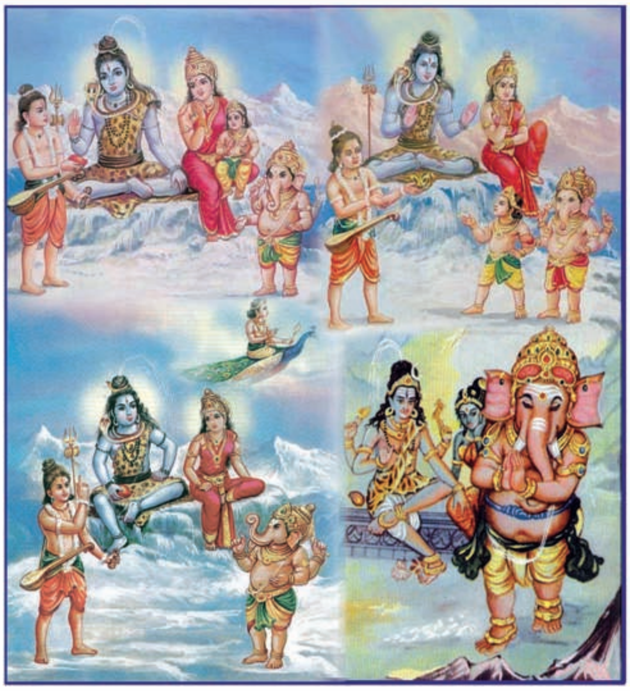

को प्रमथ गणों का अधिपति बनाये शिव और माता पार्वती ने। तब से वह बालक विनायक 'गणेश' कहा गया।

हम हर साल गणेश का जन्म दिन भाद्रपद महीने में शुक्ल पक्ष के चविति दिन पर मनाते है। भगवान गणेश की इस कथा से हमें यह बात मालुम होता है कि भगवान गणेश सिर्फ अपनी माँ-बाप को तीन बार प्रदक्षिण करने के कारण है गणपति बन गया है। इसीलिए हम भी अपनी माँ-बाप को सम्मान करना चाहिए।

विनायक चविति के बारे में और एक घटना प्रचारित है। वो है जो विनायक चविति दिन पर आसमान में चमकने वाला चाँद को देखेगा वह अपमान किया गयेगा।

इस घटना के संबंध में मैं यह बात लिखती हूँ कि एक विनायक चविति के अवसर पर विनायक अपने वाहन चूहे पर बैठकर जा रहे थे। ठीक उसी समय विनायक नीचे गिर पडे। उस दृश्य को देखकर आसमान में चमकने वाला चाँद ने उसे (विनायक को) हँसी उडाया।

इस के कारण कुपित होकर गणेश जी ने चाँद को एक शाप दिया। वह शाप यह है कि जो विनायक चविति

के पर्वदिन पर आसमान में चमकनेवाले चान्द को देखेगा वह अपनिंदा के पात्र बनेगा। यह कथा सत्य है।

एक घटना का एक कथा का ज्वलंत उदाहरण है। एक बार सत्यभामा देवी के पिता सत्राजित के पास एक मणि था। उस मणि का नाम है 'श्यमंतक' है। वह मणि बहुत महिमान्वित है और हर रोज स्वर्ण और संपत्ति देती है। इस के कारण सत्राजित बहुत धनवान बन गया।

एक बार सत्राजित के भाई उस मणि को अपने गले में पहनकर जंगल में गया। उस जंगल में एक सिंह ने उस के गले में मणि को देखकर माँस खण्ड समझकर उस को मार डाला।

इस समय जांबवंत ने उस सिंह के पास उस मणि को देखकर उसे मार कर मणि को अपना लिया। लेकिन विनायक चविति के अवसर पर श्रीकृष्ण ने आसमान में चाँद को देखने के कारण उस मणि श्रीकृष्ण को चुरी गयी। यह कथा प्रचलित हुयी। भगवान श्रीकृष्ण कुपित होकर अपने आप निर्दोष साबित करने के लिए उस जांबवंत से युद्ध करके उस मणि और जांबवंत की पुत्री जांबवती को विवाह करके लौट आया। और उस मणि को सत्राजित को देकर और उसकी प्रिय पुत्री सत्यभामा देवी को श्रीकृष्ण से परिणय कराया। इस कथा को सुनकर या पढ कर चविति के दिन सिर पर अक्षत डालने से दोषों से मुक्ति मिलती है।

यही विनायक चविति की महत्ता है।

बलराम जयंती

- डॉ.जी.शेक षावली
मोबाइल - ९८८५०८३४७७

जन्म

भगवान श्रीकृष्ण के बड़े भाई के रूप में अवतरित बलराम का जन्म दिन ही हल छठ या बलराम जयंती है। धार्मिक ग्रंथों के अनुसार मान्यता है कि इस दिन भगवान शेषनाग ने 'द्वापर युग' में अवतरित हुई।

शास्त्रों के अनुसार बलराम (बलभद्र) भगवान वसुदेव के ब्यूह या स्वरूप हैं। बलराम का जन्म यदूकुल के चंद्रवंश में हुआ था। कंस ने अपनी प्रिय बहन देवकी का विवाह यदुवंशी वसुदेव से विधिपूर्वक कराया था। जब कंस अपनी बहन को रथ में बैठा कर वसुदेव के घर ले जा रहा था तभी आकाशवाणी हुई कि उसकी बहन की आठवीं संतान ही उसे खत्म करेगी। जिसके बाद कंस ने अपनी बहन को कारागार में बंद कर दिया था और उसके ६ पुत्रों को मार दिया, ७वें पुत्र के रूप में नाग के अवतार बलराम जी थे जिसे श्रीहरि ने योग माया से वसुदेव की और एक पत्नी 'रोहिणी' के गर्भ में स्थापित कर दिया। इन्हें शेषनाग का अवतार भी कहते हैं। इनके अन्य नाम है - बालदेव, बालदाऊ, बलभद्र, हल्धरा, हलायुध।

जन्म रहस्य

इनकी जन्म की कथा भी काफी रोमांचक है। मान्यता है कि ये माँ देवकी के सातवें गर्भ थे, चूंकि देवकी की हर संतान पर कंस की कड़ी नजर थी इसलिए इनका बचना बहुत ही मुश्किल था ऐसे में देवकी के सातवें गर्भ गिरने की खबर फैल गई लेकिन असल में देवकी और वसुदेव के तप से देवकी का यह सातवा गर्भ वसुदेव की और एक पत्नी के गर्भ में प्रत्यापित हो चुका था। लेकिन उनके लिये संकट यह था कि पति तो कैद में हैं फिर ये गर्भवती कैसे हुई लोग तो सवाल पूछेंगें लोक निंदा से बचने के लिये जन्म के तुरंत बाद ही बलराम को नंद बाबा के यहाँ पलने के लिये भेज दिया गया था।

बलराम जयंती (हलषष्ठी, हल छठ)

बलराम जयंती को देशभर में कई प्रान्तों में मनायी जाती है। धार्मिक ग्रंथों के अनुसार मान्यता है कि इस दिन भगवान शेषनाग ने द्वापर युग में भगवान श्रीकृष्ण के बडे भाई के रूप में अवतरित हुए थे। इस पर्व को हलषष्ठी एवं हल छठ के नाम से भी जाना जाता है। जैसा कि मान्यता है कि बलराम जी का मुख्य शस्त्र हल और मूसल हैं जिस कारण इन्हें हलधर कहा जाता है। इन्हीं के नाम पर इस पर्व को हलषष्ठी के भी कहा जाता है। इस दिन बिना हल चले धरती से पैदा होने वाले अन्न, शाक भाजी आदि खाने का विशेष महत्व माना जाता है। गाय के दूध व दही के सेवन को भी इस दिन वर्जित माना जाता है। साथ ही संतान प्राप्ति के लिये विवाहिताएँ व्रत भी रखती हैं।

विवाह

यह मान्यता है कि भगवान विष्णु ने जब-जब अवतार लिया उनके साथ शेषनाग ने भी अवतार लेकर उनकी सेवा की। इस तरह बलराम को भी शेषनाग का अवतार माना जाता है। लेकिन बलराम के विवाह का शेषनाग से क्या नाता है यह भी आपको बताते हैं। दरअसल 'गर्ग संहिता' के अनुसार एक इनकी पत्नी 'रेवती' की एक कहानी मिलती है जिसके अनुसार पूर्व जन्म में रेवती पृथ्वी के राजा 'मनु' की पुत्री थी जिनका नाम था ज्योतिष्मती। एक दिन मनु ने

अपनी बेटी से वर के बारे में पूछा कि उसे कैसा वर चाहिये इस पर ज्योतिष्मती बोली जो पूरी पृथ्वी पर सबसे शक्तिशाली हो। अब मनु ने बेटी की इच्छा इंद्र के सामने प्रकट करते हुए पूछा कि सबसे शक्तिशाली कौन है तो इंद्र का जवाब था कि वायु ही सबसे ताकतवर हो सकते हैं लेकिन वायु ने अपने को कमजोर बताते हुए पर्वत को खुद से बलशाली बताया फिर वे पर्वत के पास पहुँचे तो पर्वत ने पृथ्वी का नाम लिया और धरती से फिर बात शेषनाग तक पहुँची। फिर शेषनाग को पति के रूप में पाने के लिये ज्योतिष्मती ब्रह्मा जी के तप में लीन हो गई। तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा जी ने द्वापर में बलराम से शादी होने का वर दिया। द्वापर में ज्योतिष्मती ने राजा कुशस्थली के राजा (जिनका राजा पाताल लोक में चलता था) कुडुम्बी के यहाँ जन्म लिया। बेटी के बड़ा होने पर कुडुम्बी ने ब्रह्मा जी से वर के लिये पूछा तो ब्रह्मा जी ने पूर्व जन्म का स्मरण कराया तब बलराम और रेवती का विवाह तय हुआ। लेकिन एक दिक्कत अब भी थी वह यह कि पाताल लोक की होने के कारण रेवती कद-काठी में बहुत लंबी-चौड़ी दिखती थी पृथ्वी लोक के सामान्य मनुष्यों के सामने तो वह दानव नजर आती। लेकिन हलधर ने अपने हल से रेवती के आकार को सामान्य कर दिया। जिसके बाद उन्होंने सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत किया।

बलभद्र या बलराम श्रीकृष्ण के सौतेले भाई कहलाए...

इसलिए बलभद्र या बलराम श्रीकृष्ण के सौतेले भाई कहलाए इनके सगे सात भाई और एक बहन सुभद्रा थी जिन्हें चित्रा भी कहते हैं। इसका ब्याह रेवत की कन्या रेवती से हुआ था। कहते हैं, रेवती २१ हाथ लंबी थीं और बलभद्र जी ने अपने हल से खींचकर इन्हें छोटी किया था। इन्हें नागराज अनंत का अंश भी कहा जाता है।

सूरदास का कथन

मैया बहुत बुरौ बलदाऊ।
कहन लग्यौ बन बड़ो तमासौ, सब मोड़ा मिलि आऊ।
मोहूँ कौं चुचकारि गयौ लै, जहां सघन वन झाऊ।
भागि चलौ, कहि, गयौ उहां तैं, काटि खाइ रे हाऊ।
हौं डरपौं, कांपौं अरू रोवौं, कोउ नहिं धीर धराऊ।
थरसि गयौं नहिं भागि सकौं, वै भागे जात अगाऊ।
मोसौं कहत मोल को लीनौ, आपु कहावत साऊ।
सूरदास बल बडौ चवाई, तैसेहि मिले सखाऊ।।

भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन करने वाले महाकवि सूरदास ने बालक कृष्ण के बहाने जिन बलदाऊ का यह चित्र खिंचा है इनके बारे में सभी मुख्यतः इतना ही जानते हैं कि बलदाऊ या कहें हलधर बलराम भगवान श्रीकृष्ण के बड़े भाई थे। लेकिन पौराणिक ग्रंथों में इनकी महिमा इससे बहुत आगे है। बलराम के शक्तिबल से सभी परिचित हैं।

गदायुद्ध में प्रवीण

ये गदायुद्ध में प्रवीण थे, धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन इनका ही शिष्य था। इसी से कई बार इन्होंने जरासंध को पराजित किया था। श्रीकृष्ण के पुत्र शांब जब दुर्योधन की कन्या लक्षणा का हरण करते समय कौरव सेना द्वारा बंदी कर लिए गए तो बलभद्र ने ही उन्हें छुड़ाया था।

दुर्योधन के पुत्र से, बलराम की पुत्री वत्सला का विवाह...

बलराम और रेवती के दो पुत्र हुए जिनके नाम निशता और उल्मुख थे। एक पुत्री ने भी इनके यहाँ जन्म लिया जिसका नाम वत्सला रखा गया। माना जाता है कि

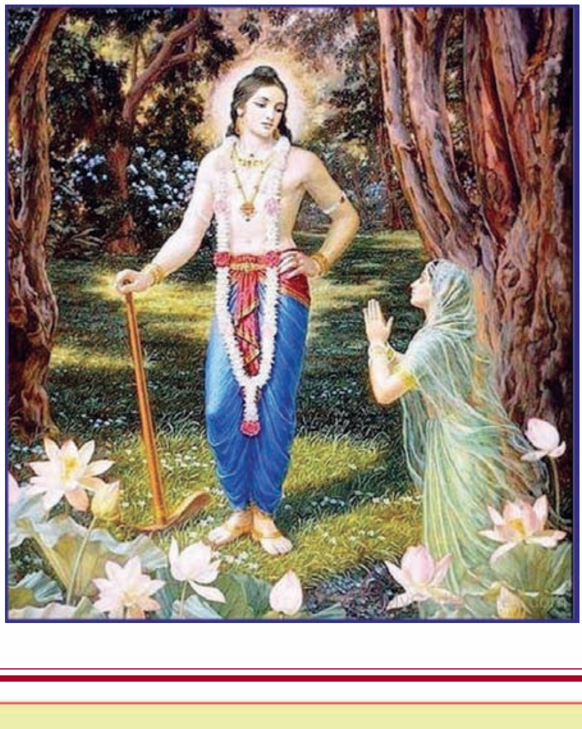

श्राप के कारण दोनों भाई आपस में लड़कर ही मर गये। वत्सला का विवाह दुर्योधन के पुत्र लक्ष्मण के साथ तय हुआ था, लेकिन वत्सला अभिमन्यु से विवाह करना चाहती थी। तब घटोत्कच ने अपने माया से वत्सला का विवाह अभिमन्यु से करवाया था।

व्रत कथा

व्रत संतान की लंबी उम्र की कामना से किया जाता है। इसे हल षष्ठी, हल छठ भी कहा जाता है। वास्तव में ये दिन बलराम जयंती का है।

भगवान श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम जी का जन्मोत्सव के दिन ये व्रत किया जाता है।

एक नगर में एक ग्वालिन गर्भवती थी। उसका प्रसवकाल नजदीक था, लेकिन दूध-दही खराब न हो जाए, इसलिए वह उसको बेचने चल दी। कुछ दूर पहुँचने पर ही उसे प्रसव पीड़ा हुई और उसने झरबेरी की ओट में एक बच्चे को जन्म दिया।

उस दिन हल षष्ठी थी। थोड़ी देर विश्राम करने के बाद वह बच्चे को वहीं छोड़ दूध-दही बेचने चली गई। गाय-भैंस के मिश्रित दूध को केवल भैंस का दूध बताकर उसने गाँव वालों को चल कर दूध बेच दिया। इससे व्रत करने वालों का व्रत भंग हो गया।

इस पाप के कारण झरबेरी के नीचे स्थित पड़े उसके बच्चे को किसान का हल लग गया। दुखी किसान ने झरबेरी के कांटों से ही बच्चे के चिरे हुए पेट में टांकें लगाए और चला गया।

हल छठ व्रत का महत्व

हल छठ व्रत महिलाएँ अपनी संतान की लंबी आयु और सुखमय जीवन के लिए रखती हैं। ऐसी मान्यता है कि इस दिन बलराम जी और हल की पूजा करने से संतान को लंबी आयु प्राप्त होती है और वह जीवन भर सुखी रहता है। बलराम जी की अस्त्र हल है, इसलिए इस दिन हल की पूजा करने का विधान है। हल के कारण ही इसे 'हल छठ' कहा जाता है।

शाम के समय विधि से पूजा करें

शाम के समय छोटा सा तालाब बनाया जाता है। अगर तालाब बनाने का विकल्प ना हो तो किसी बड़े आकार के बर्तन, टब में पानी भरकर उसे तालाब माना जाता है-

झरबेरी, पलाश की टहनियों व कांस की डाल को एकसाथ बांधने के बाद चना, गेहूं, जौ, धान अरहर, मूग, मक्का व महुआ को बांस की टोकरी या फिर चुकड़ी में

भरकर दूध-दही, गंगा जल अर्पित करते हुए षष्ठी देवी की पूजा की जाती है।

जमीन को साफ कर वहाँ पूजा की चौकी बनाई जाती है, फिर कच्चे जनेउ का सूत हरछठ को पहनाया जाता है।

पूजन में गेहूं, चना, धान, मक्का, ज्वार, बाजरा और जौ यानी सात प्रकार के अनाज का भुना हुआ लावा चढ़ाया जाता है, पूजा के बाद कथा सुनी जाती है।

पुत्र की लंबी उम्र के लिए रखा जाता है 'हल छठ' व्रत

नई दिल्ली के आस-पास में पुत्र की प्राप्ति और संतान की लंबी उम्र के लिए रखा जाने वाला व्रत 'ललई छठ' है। इस दिन भगवान श्रीकृष्ण के बड़े भाई का जन्म हुआ था इसलिए इसे 'बलराम जयंती' के भी नाम से जाना जाता है। बलराम जी का पसंदीदा शस्त्र 'हल' है इस कारण इसे 'हल छठ' भी कहते हैं।

(गतांक से)

सियाराम ही उपाय

शरणागति मीमांसा

(षष्टम खण्ड)

सियाराम ही उपेय

मूल लेखक
श्री सीतारामाचार्य स्वामीजी, अयोध्या

प्रेषक
दास कमलकिशोर हि. तापडिया
मोबाइल - ९४४९५१७८७९

१००

श्रीमते रामानुजाय नमः

इस दोहे का वही अर्थ है जो कि पहले कह चुके हैं। इससे प्रत्येक मनुष्य को संसार बंधन से छुटने के लिये और उस परमपद की प्राप्ति के लिये शास्त्रों में कहे हुए उपायों की अवश्य खोज करनी चाहिए। संसार में दो प्रकार के अधिकारी हैं। एक बुभुक्षु दूसरा मुमुक्षु। शास्त्र की आज्ञानुसार चाहिए तो इन दोनों को अपना मुक्ति मार्ग सुधारना, क्योंकि दस रोज आगे पीछे सब को श्मशान घाट पर जाना है और मुक्ति मिले बिना आवागमन मिट नहीं सकता। और जब तक आवागमन से छुटकारा नहीं मिलेगा तब तक सच्चा सुख मिल ही नहीं सकता। जिनको संसार का स्वरूप और परमपद का आराम सत्संग न करने के कारण नहीं मालूम है उनके लिये सत्संग अपेक्षित है और जो सत्संग द्वारा इस संसार का अति भयंकर स्वरूप समझ चुके हैं, भयंकर जन्म-मरण चक्र के स्मरण से जिनका हृदय घबडाया हुआ है और जो अवश्य संसार बन्धन से छूट कर इसी जन्म के अन्त में परमपद जाना चाहते हैं ऐसे सच्चे मुमुक्षुओं के लिए भवसागर से तरने के लिये और उसे परमपद में जाने के लिये सत् शास्त्रों के द्वारा सब के लायक कौनसा अचूक उपाय निर्णय किया गया है अब इसी बात का आगे विचार करेंगे।

श्री देवराज गुरु कहते हैं कि हे मुमुक्ष महात्माओं! इस प्रसंग को एकाग्र मन से श्रवण करना चाहिए। शास्त्रों में संसार से पार होकर भगवत्सेवा में जाने के लिए तो अनेक प्रकार के उपाय वर्णन किये गये हैं परन्तु बडों के कहने से और शास्त्रों के श्रवण से यह मालूम पडा कि भक्ति और शरणागति इन दो उपयों को छोडकर बाकी जितने हैं वे अनेक झंझटों से भरे हुए हैं सुनने में तो प्रिय लगते हैं परन्तु अनुष्ठान करने में इतने कठिन हैं कि एक जन्म तो क्या लाखों जन्म में भी कोई उनके बल से संसार बन्धन से नहीं छूट सकता है। उपाय स्वरूप जो भक्ति है यह भी सुनने ही में सुलभ है परन्तु भलीभांति इसका स्वरूप जब मालूम हो जाता है तो समझ आता है कि साधन स्वरूप भक्ति योग से भी संसार बन्धन छूटना और परमपद मिलना बडा ही मुश्किल है। इस प्रपत्ति मीमांसा के पूर्व भाग में कर्म का स्वरूप और उसकी कठिनता तथा ज्ञान का और भक्तियोग का स्वरूप भलीभांति से वर्णन कर आया हूँ। जिसको समझने की इच्छा होय सो पूर्व भाग से समझ लेवे। यहाँ तो सबके लायक अत्यन्त सरल अचूक उपाय जो भगवान की शरणागति है उसी के सम्बन्ध में सब प्रकार से विचार करना है किन्तु पहले यह कहूँगा कि भक्ति और प्रपत्ति में क्या भेद है और भक्ति में किस बात की कठिनाई और शरणागति में क्या सुलभता है, तथा शरणागति में प्रमाण क्या है, शरणागति कहते किसको हैं। संसार बन्धन से छूटकर परमपद में जाने के लिये साधन भावना से स्वतन्त्रता पूर्वक अपने को कर्त्ता भोक्ता मान कर जो नवधा भक्ति का अनुष्ठान करना है उसको साधन स्वरूप भक्तियोग कहते हैं। इस प्रसंग को

अच्छी तरह से समझना चाहिये। श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, चरण-सेवा, सब प्रकार से भगवान का पूजन, श्रीहरि को साष्टांग प्रणाम और भी श्री भगवान की अनेक कैंकर्य, प्रभु के साथ सख्य भावना, श्रीपति के श्रीचरणों में आत्मा का अर्पण करना नवधा भक्ति है। इसी नवधा भक्ति को मुक्ति का साधन मानकर जो करना है उसका नाम साधन स्वरूप भक्ति योग है। इस भक्ति योग को जो परमपद मिलने के लिये उपाय मान कर करते हैं उसको भक्त कहते हैं। साधन भक्ति को करने वाले भक्त भगवान की तरफ से स्वतन्त्र कर्त्ता और भोक्ता माने जाते हैं। क्योंकि जिस चीज का जो कर्त्ता होता है वही उसका भोक्ता भी रहता है। यही शास्त्रों का सिद्धान्त है। ''स्वतन्त्रः कर्त्ता मत्फल साधनत्वान्मदर्थमिदं कर्म।'' इसका यह भाव भया कि जो खुद अपने को करने वाला मान कर कुछ साधन करता है, शास्त्रों के द्वारा वह स्वतन्त्र कहा जाता है क्योंकि साधन दशा में ही वह मानसिक संकल्प कर लेता है कि अपने आराम के लिये मैं इस साधन को कर रहा हूँ; इससे इस साधन का कर्त्ता भी मैं हूँ। इस साधन के जरिये मिलने वाला जो फल है उसको भोगने वाला भी मैं ही रहूँगा, इस प्रकार मानसिक संकल्प करने के कारण अपने साधन का कर्त्ता और उसके द्वारा मिलने वाला फल का भी भोक्ता वही रहता है इस साधन भक्ति वाले अधिकारी का सारा कर्तव्य अहंकार गर्भित होने के कारण परमात्मा की तरफ से भी इसके लिए अनेक प्रकार की शर्ते रखी गई हैं। जैसे कि अपने को कर्त्ता मान कर साधन भक्ति करने वाले को सबसे पहले सांगोपांग कर्म योग को कर लेना

चाहिए। सांगोपांग कर्मयोग सिद्ध हो जाने के बाद उसको शास्त्रोक्त साधन स्वरूप ज्ञान योग में जाने लायक अधिकार प्राप्त होगा। बाद पूर्ण रूप से शास्त्र के सिद्धान्त मुजब ज्ञान योग प्राप्त हो जाने के अनन्तर फिर उसको साधन भक्ति की प्राप्ति होगी। इतना होने के बाद भी मरते समय श्री भगवान के श्री विग्रह का ध्यान करता हुआ तथा उनके श्री नामों का मुख से उच्चारण करता हुआ यदि शरीर छोडेगा तब उसकी मुक्ति हो सकेगी और उसके प्रारब्ध वश यदि अन्त में भगवान का स्मरण न होकर किसी दूसरी चीज का स्मरण हो आया तो गति बिगड जायेगी और अन्त में जहाँ मन जायेगा उसी जगह परवश जन्म लेना पडेगा। जैसे महात्मा जडभरतजी अन्त में हरिण के बच्चे के स्मरण से फिर हरिणी के गर्भ में आये, इस साधन भक्ति के सिद्ध होने में बडे-बडे अडंगे है। पहले तो सांगोपांग कर्मयोग का स्वरूप ही जानना मुश्किल है। क्योंकि श्री भगवान ही का कहा हुआ है कि ''गहना कमर्णो गतिः'' याने कर्म की गति बडी गहन है, अति दुर्ज्ञेय है। किसी प्रकार लाखों में कोई एक उसका स्वरूप समझ जाय तो भी उसको सिद्ध कर लेना महा कठिन है खास भगवान का श्री मुख वचन है कि : -

''असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः''

जिसका मन वश नहीं हुआ है उस अधिकारी से कर्मयोग सिद्ध हो ही नहीं सकता।

क्रमशः

(गतांक से)

अहोबिल-यात्रा

अक्कलम्मा, तिरुमलम्माओं के साथ विवाह के पश्चात् अन्नमय्या ने वेदांत-विद्या के अभ्यासन के वास्ते अहोबल-महाक्षेत्र के लिए प्रस्थान किया। वहाँ प्रसिद्ध वैष्णवाचार्य के यहाँ वेदांत विद्या का अभ्यासन किया। उस वैष्णवाचार्य का नाम शठकोपमुनि था। वहाँ उसने ब्रह्मविद्या का अभ्यासन किया। उस दिन से हर रोज श्रीहरि का ध्यान, पूजन, सेवा, कीर्त्तन, गान, चिंतन-मनन से अन्नमय्या का मन रम गया और उसका समय इसी विरुद्ध भक्ति व्यासंग में व्यतीत होने लगा।

संकीर्त्तना यज्ञ

अन्नमय्या ने उन्हीं को अपना भोग समझने लगा, जो स्वामी को समर्पित होने वाले कैंकर्य होते थे। वाल्मीकि रामायण के प्रति रुचि से रामायण की कथाओं को संकीर्त्तन बना कर गान किया। उस गानामृत सुने हुए सब प्रशंसित करते थे कि अन्नमय्या कोई तुम्बुर, नारद या कोई गन्धर्व हुआ होगा, न कि साधारण मानवमात्र।

सालुव नरसिंहरायलु

ताल्लपाका के समीप टंगुटूरु नामक कस्बे के पालक, संगमवंश के राजाओं के प्रतिनिधि सालुव नरसिंहरायलु ने अन्नमय्या की गानामृत धारा के बारे में सुनकर, ऐसे महानुभाव को दर्शित कर तरने की अभिलाषा से, कुतूहल से अन्नमय्या के यहाँ जाकर, गौरव पूर्वक अभिवादन किया। उसने अन्नमय्या से अभ्यर्थना की कि वह अपना गाँव अपना अतिथि बनकर आकर, अपने आस्थान को पावन करें। वैष्णव भक्त को तिरुस्कृत न किया जाता है, अतएव अन्नमय्या ने सुमुखता व्यक्त कर, नरसिंहराय के प्रभंदित पालकी चढ़ कर टंगुटूरु प्रस्थान किया। वहाँ विलसित चेन्नकेशवस्वामी का दर्शन कर, उस देवालय के समीप के अपने लिए प्रभंदित अतिथि-गृह में प्रवेश किया। उससे लेकर नरसिंहरायलू अन्नमय्या को हित, गुरु, बंधू मानकर आदर करता था। हर काम अन्नमय्या को बताकर कर रहा था। अन्नमय्या के आशीर्वाद-बल से सालुव नरसिंहरायलु ने पेनुगोंडा जाकर राज-शासन करने लगा था। अन्नमय्या को उस नगरी में आह्वानित

कर, आदर कर-जनरंजक श्री वेंकटेश्वरस्वामी के कीर्त्तन एक बार गायन कर, सुना कर अपने को तराने की प्रार्थना की।

एमुको चिगुरु... ... नेत्तुरु कादुगदा! (५-८२)

इस तरह अन्नमय्या ने अपने गानामृत-रीत से श्रीवेंकटेशामृत, श्रीनिवासांकित संकीर्त्तनों का गायन कर सुनाया, नरसिंहराय की अभ्यर्थना मान कर, परिशुद्ध शहद की तरह, शुद्ध किये हुए गन्ने के रस की भांति, शीतल मलय-मारुत में कपूर की सुगन्ध की नाई, कानों में अमृत की धारा-सी, रस-मलाई की विधि हुए अन्नमय्या के गान माधुरी पर राजा मुग्ध बन गया। 'आहा! ओहो! अद्भुत!!' कहते हुए अन्नमय्या की स्तुति की। किस्म-किस्म से सराहा। कई ढंगों से सत्करित किया। उस दिन से सालुवनरसिंहराय हर रोज अन्नमय्या के श्री वेंकटेश्वर की महिमा वैभव की स्तुति में गाते संकीर्तन सुनते-सुनते समय व्यतीत करने लगा है।

एक दिन नरसिंहराय ने राचरिक तामस से, जो स्वतः सिद्ध ही होता था, अन्नमय्या से अनुरोध किया कि वह अपने भी ऊपर ऐसे ही एक संकीर्त्तन या पद का निर्माण करके गाये, जैसे सप्तगिरीश श्री वेंकटेश्वर पर गाया जाता है!!?... राजा के इस अनुरोध से अन्नमय्या चौंक पड़ा। ''हरि! हरी!!' बोलते हुए-

बरम पतिव्रता भावंबु...

... न कन्ना चेलियलिवावि

- अन्नमाचार्य चरित्रा, पृ.सं.३२८

''उस हरि के स्तोत्र करने वाली जीभ से इतरों की मैं स्तुति नहीं कर पाता। मुझ से इस नीच बातें कैसे की तूने? श्रीनिवास के अलावा अन्यों की स्तुति करना मेरे लिए मानो सगी बहन से परिवाने सरीखा है!'' कहते हुए नकारा था अन्नमय्या ने। कठोर स्वर में बिना किसी झिझक के रायडू से कह दिया, ''मुझे तू नहीं चाहिए और न चाहिए तेरा स्नेह!'' उन बातों से, उस तिरस्कार से कोपो-द्रक्त राजा नरसिंहरायलु ने अन्नमय्या को बंदी बना कर,

भूरुरायरगंडा-बेडियाँ लगा देने सेवकों को आज्ञा दे दी। हालांकि सेवकों को अपने प्रीति पात्र अन्नमय्या को श्रृंखला-बद्ध बनाना मंजूर न था, फिर भी राजाज्ञा-बद्ध होने के नाते उन्होंने पदकर्त्ता को बेडियों से बंधित बनाया।

आकटि वेलल नलपैना...

... बोरलिन मरिलेदु तेरगु (१-१५८)

इस प्रकार-अन्नमय्या के संकीर्त्तन का गान किये जाने पर, बंधित बेडियाँ अपने-आप टूट कर धरा पर गिर गयीं थीं! पहरेदारों के कलेजे चूर-चूर बन गये थे। भयकंपित उस कारागृह के रक्षक-दल दौडे-दौडे जाकर, राजा को इस वृत्तांत की इत्तला दी। राजा ने भगवान के इस चमत्कार को यकीन नहीं किया, बल्कि हँसी-ठट्ठा की। अन्नमय्या को पास जेल में जाकर, ''सेवकों को डराकर,

माया करते हो। चाहे तुम कितनी माया ही क्यों न करो, मैं तुम्हें नहीं छोडूँगा, मायावी।...'' कहा, अन्नमय्या को पुनः श्रृंखलाओं से बाँध दिया गया। फिर क्या, पिछले, भूखे समय, थके हुए...' वाले संकीर्त्तन का पूरा-पूरा जोरदार गायन कर दिया। राजा के मूर्खत्व पर, अपने विश्वास किये परमात्मा की महिमा पर अपार विश्वास किये हुए अन्नमय्या को हँसी आयी। अन्नमय्या के जोरदार आर्त्तालापन से कनगुरिये के प्रमाणवाले श्रृंखलाओं के कीले फट-फट टूट कर जमीन पर गिर गये और श्रृंखलाएँ टूट कर अन्नमय्या के चरणों-तले गिर पड़ीं। इस-चमत्कारपूर्ण चर्या पर राजा सालुव नरसिंहराय की तामसाग्नि बुझ-सी गयी। उसका अहंकार चूर-चूर बन गया। टूटी हुई थीं श्रृंखलाएँ नहीं, राजा का घमंड था। वह झट महात्मा अन्नमय्या के पाद-पंखेरुहों पर गिर गया और आंखों के जरिये अश्रुओं की अजस्रधारा बहने लगी। वह जोर रोया। रुदन से गलारौंध जाने से राजा रुद्ध कंठ से कहा ''गुरुवर मैं पापी हूँ। मैं ने आपको श्रृंखलाबद्ध बनाकर घोर पाप किया है। मुझे निहालो! मेरी क्षमा करो। आप ही मेरे भगवान! आप ही मेरे देवता। गुरु ब्रह्म आप ही मेरे तिरुमलेश और आप ही मेरे श्री वेंकटेश्वर! करुणा दिखाओ! दया करो मेरे परमात्मा।'' राजा ने गुलाब जल से अन्नमय्या के पैर धोया। उसे पालकी में बिठा कर और स्वयं पालकी ढ़ोते हुए नगर में घुमाया। उसके अथाह पश्चात्ताप और अविचल क्षमा-याचना पर अन्नमय्या का वैष्णव हृदय पिघल गया और उस पद-योगी ने अपने किंकर राजा नरसिंहराय को क्षमा भिक्षा प्रसादित की। ''आज से हरिपूजन करनेवालों को साधारण व्यक्तिमात्र न होकर, परम-पूजनीय समझो, राजन!'' कहा।

और भी, ''ध्यान-मार्ग के जरिये कृतयुग में, यज्ञ-यागादि कार्मों से त्रेतायुग में, अर्चना-पूजा विधि के कारण द्वापर युग में और नाम संकीर्त्तन के कारण कलियुग में वह श्रीहरि अपने भक्तों को अनुगृहीत बनाता है। अतएव तुम देवाधिदेव श्री वेंकटेश्वर पर भक्ति से, उस स्वामी के भक्तों पर श्रद्धा से जीवन बिताओ।'' राजा को उपदेश देकर अन्नमय्या पेनुगोंडा नगरी में तिरुमल गिरि पहुँच गया।

तिरुमल पहुँचने पर अन्नमय्या ने ५१६ द्विपदा-चरणों के युत 'श्रृंगार-मंजरी' नामक द्विपद काव्य की रचना बनाकर श्रीनिवास भगवान को अंकित दिया। अनेक संकीर्त्तनों से स्वामी के स्तोत्र बनाने के कारण अन्नमय्या को वाक्यशुद्धि मिली थी। उनके वचनों को दिव्यत्व-सिद्धि मिल चुकी थी। क्रमशः अन्नमय्या तिरुवेंकटनायक श्री वेंकटेश्वर का आस्थान गायक बन पड़ा।

क्रमशः

भक्त प्रह्लाद की शिक्षाऐं

तेलुगु मूल - डॉ.वैष्णवाँघ्रि सेवक दास

हिन्दी अनुवाद - श्री अमोघ गौराँग दास

मोबाइल - ९८२१९१४६४२

सभी दिव्य गुणों से युक्त पाँच वर्ष के बालक भक्त प्रह्लाद एक महान राक्षस हिरण्यकशिपु के पुत्र थे। जब अध्यापक प्रह्लाद को उनके पिता के पास ले गये, तो प्रह्लाद ने अपने पिता के चरणों में आदर पूर्वक दण्डवत प्रणाम किया। तब समस्त चौदह लोकों में भय के प्रतीक हिरण्यकशिपु को भी शीघ्र ही पुत्र के प्रति प्रेम उमड़ आया। उसने अपने पुत्र को गले से लगाकर गोद में बैठा लिया। उसने उन्मादपूर्ण अवस्था में प्रसन्न होकर अपने पुत्र से कहा ''प्रिय पुत्र प्रह्लाद! चिरंजीवी हो! तुमने अपने अध्यापकों से जो सुना और सीखा है उसमें से जो तुम्हें सर्वाधिक प्रिय है वह मुझे बताओ। मैं तुम्हारी बुद्धिमत्ता को सुनने के लिए उत्सुक हूँ।''

पिता द्वारा पूछे जाने पर भक्त प्रह्लाद ने निर्भयता से बोलना प्रारम्भ किया ''भगवान, विष्णु के दिव्य नाम, यश एवं उनकी लीलाओं के विषय में सुनना तथा कीर्तन करना, उनका स्मरण करना, भगवान के चरणकमलों की सेवा करना, षोडशोपचार विधि द्वारा भगवान का पूजन करना, भगवान को आत्मनिवेदन करना, उनका दास बनना, भगवान को सर्वश्रेष्ठ मित्र मानना तथा उन्हें अपना सर्वस्व न्योछावर करना, ये शुद्ध भक्ति की नौ विधियाँ हैं। इन नौ विधियों द्वारा भगवान जी को अपना जीवन अर्पित करने वाले व्यक्ति को सर्वोच्च माना जा सकता है।'' पुत्र प्रह्लाद के इन वचनों को सुनकर हिरण्यकशिपु अत्यंत क्रुद्ध हुआ और अध्यापकों पर चिल्लाने लगा। अध्यापक पंखों की भाँति काँपने लगे और हाँथ जोड़ कर उन्होंने अपने निर्दोष होने का प्रमाण देने का प्रयत्न किया। उन्होंने बताया कि जो भी प्रह्लाद ने कहा वह न तो उनके द्वारा सिखाया गया है और न ही उनकी उपस्थिति में किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा सिखाया गया है। उन्होंने अध्यापकों को भला-बुरा न कह कर प्रह्लाद के उस व्यवहार का वास्तविक कारण जानने का सुझाव दिया। अध्यापकों के सुझाव से हिरण्यकशिपु के क्रोध का कांटा प्रह्लाद की ओर मुड़ गया। और उसने अत्यंत भयभीत करने वाले भाव के साथ वही प्रश्न बालक प्रह्लाद से पूछा। निरंतर भगवान जी की शरण में रहने के कारण प्रह्लाद को कोई भय न था और उन्होंने सच्चाई को पूर्ण विश्वास के साथ निम्न प्रकार कहा।

''हे पिता श्री! अपनी असंयमित इन्द्रियों के कारण जो लोग भौतिकवादी जीवन के प्रति अत्यधिक लिप्त रहते हैं वे नरकगामी होते हैं और चबाये हुए को भी बारंबार चबाते हैं। एसे लोगों का झुकाव न तो अन्यों के उपदेशों से, न अपने निजी प्रयासों से, और न ही दोनों के संयुक्त प्रभाव से भगवान जी के प्रति कमी होता है।''

''हे दैत्यराज! इन्द्रिय भोगों में लिप्त लोग एक अंधे व्यक्ति को अपना नेता या अध्यापक चुनते हैं। एक अन्धे व्यक्ति द्वारा दूसरे अन्धे व्यक्ति का मार्ग दर्शन किये जाने पर दोनों ही गड्ढ़े में गिरते हैं और ऐसे लोग निरंतर इसी जगत में रहकर तीन प्रकार के तापों एवं कष्टों को भुगतते हैं।''

''हे पिता श्री! जब तक कोई व्यक्ति श्रीवैष्णवों के सांगत्य नहीं करता है तब तक उसका परम पुरुषोत्तम भगवान के चरणकमलों के प्रति आसक्त होना संभव नहीं है। एक शुद्ध भक्त की पूर्ण रूप से शरण लेने से ही मनुष्य सभी भौतिक कल्मषों से मुक्त हो सकते हैं।''

प्रह्लाद महाराज के इन शब्दों से हिरण्यकशिपु का क्रोध चोटी पर पहुँच गया और उसने प्रह्लाद को गोदी से उठाकर नीचे फेंक दिया। वह बालक नीचे गिर पड़ा किंतु बिलकुल भयभीत न हुआ। लेकिन हिरण्यकशिपु एक कुचले हुए नाग की भाँति हो गया। अत्यंत लाल आँखों के साथ उसने अपने सहायक असुरों से कहा ''इस बालक को मेरी आँखों से दूर करो। इस निर्दयता पूर्वक मार डालो। यह प्रह्लाद मेरे शत्रु का सेवक बन गया है। इसलिये किसी प्रकार से इसका वध कर दो।'' हिरण्यकशिपु के शब्दों से वे असुर उत्साहित हो गये उसके आदेश का पालन करने के लिए प्रह्लाद को लेकर चले गये। असुर गणों ने ''उसे काटो, पीटो और मार डालो'' कहते हुए हिरण्यकशिपु के आदेश का पालन करने का प्रयत्न प्रारंभ किया। उन्होंने अपने भयंकर हथियारों से उस बालक पर प्रहार किया किंतु उनके सभी प्रयत्न व्यर्थ हो गये। जिस प्रकार पूर्णतया अपवित्र व्यक्तियों द्वारा किये जाने वाले पुण्य कर्म व्यर्थ हो जाते हैं उसी प्रकार असुरों द्वारा प्रह्लाद को मारने के सभी प्रयत्न निष्फल हो गये। उनकी तलवारें उस बालक को न काट सकीं, उनकी गदायें बालक को पीड़ा देने में असमर्थ एवं उसके सामने शक्तिविहीन थीं, उनके त्रिशूल उस बालक के कोमल शरीर को छेदने में असमर्थ थे, और उनकी भयानक चीख बालक को भयभीत करने में असमर्थ थी। अपने सभी प्रयत्नों के असफल होने पर समस्त असुर भयभीत हो गये। वे सूचना देने के लिये भागकर हिरण्यकशिपु के पास पहुँचे। यद्धपि हिरण्यकशिपु को यह जानकर आश्चर्य हुआ, लेकिन उसने सोचा कि उसके पास प्रह्लाद को मारने के और भी कई रास्ते हैं। इस प्रकार उसने एक-एक करके उन रास्तों का प्रयोग करना प्रारंभ किया। उसने बालक को हाथियों के पैरों से कुचलवाया, जहरीले साँपों से कटवाया, प्राणघातक विष पिलाया, उसे आग में फेंका, खौलते हुए तेल में गिराया और बड़े-बड़े पत्थरों के बीच दबाया। लेकिन फिर भी प्रह्लाद पूर्णतया सुरक्षित एवं शांत थे। अपने उद्देश्य को पूरा करने का कोई अन्य मार्ग न पाकर हिरण्यकशिपु चिड़चिड़ा हो गया। उसे आभास हुआ कि प्रह्लाद अमर है और वह अपने पिता की मुत्यु का कारण बनेगा। असीमित भय से वह अत्यंत उदास हो गया। प्रह्लाद के अध्यापकों ने दयाभाव से अपने स्वामी से सांत्वनापूर्ण शब्द कहे। उन्होंने यह कहकर हिरण्यकशिपु का विश्वास जगाने का प्रयत्न किया ''हे स्वामी! हमें भली प्रकार ज्ञात है कि आप से सभी देवता भी भयमीत हैं। अतः आप इस बालक की चिंता न करें। आप की सुरक्षा एवं आप का मार्ग दर्शन करने के लिए शुक्राचार्य जी हमारे साथ हैं। अभी वे बाहर गये हैं इसलिए हम उनके लौटने तक उस बालक को रस्सी से बाँधकर रखेंगे। इसके सिवा प्रौढ़ होकर यह बालक अपने आप ही सुधर जायेगा। आप कृपया इस बालक को हमारे साथ पाठशाला में वापस भेज दीजिये। हम उचित कार्यवाई करेंगे।''

अध्यापकों के शब्द हिरण्यकशिपु को ठीक लगे और उसने बालक को पाठशाला में वापस ले जाने की अनुमति दे दी। अब हिरण्यकशिपु को आशा थी कि प्रह्लाद भक्ति के मार्ग को छोड़ देगा। उसने अध्यापकों को सुझाव दिया कि वे बालक को केवल राज-परिवार के सिद्धांतों की ही शिक्षा दें। हिरण्यकशिपु का सुझाब स्वीकार करके दोनों अध्यापक प्रह्लाद के साथ गुरुकुल चले गये। (निष्कर्ष अगले अंक में)।

गतांक से

श्री रामानुज नूट्रन्दादि

मूल - श्रीरंगामृत कवि विरचित

प्रेषक - श्री श्रीराम मालपाणी
मोबाइल - ९४०३७२७९२७

उदिप्पन वुत्तमर् चिन्तैयुळ्, ओन्नलर् नेञ्जमञ्जि
क्कोदित्तिड मारि नडप्पन, कोळ्ळै वन्कुत्त मेल्लाम्
पदित्त वेन्पुन्कवि प्पाविनम् पूण्डन पावुतोल्शीर्
यतित्तलै नाथन्, इरामानुजन् तन् इणैयडिये ॥५०॥

विश्वप्रसिद्धकल्याणगुराशेर्यतिपुरन्दरस्य रामानुजमुनेश्चरणारविन्दद्वंद्वम् उत्तमानां सतामन्तःकरणे प्रचुरप्रकाशम्; प्रतिपक्षिदुर्जनभयानकगतिविशेषभासुरम्; अनवधिकावद्यभरितमदीयकविताविषयभूतं च॥

सारे भूतल पर विस्तृत यशवाले यतिराज श्रीरामानुज स्वामीजी के उभय श्रीपाद उत्तम पुरुषों के हृदयों में चमकते हैं; प्रतिपक्षियों के लिए भयंकर संचार करते हैं; और अपार व असह्य दोषों से परिपूर्ण मेरी इस स्तोत्ररूपी क्षुद्र कविता को स्वीकार करते हैं। (विवरण - दुर्मतवाले प्रतिपक्षियों का निरास करते हुए श्री स्वामीजी ने जो क्षेत्रतीर्थयात्रा की, उसकी सूचना यहाँ पर की जा रही हैं। आपकी यात्रा (अथवा संचार) दुर्वादियों को भयंकर होती है।)

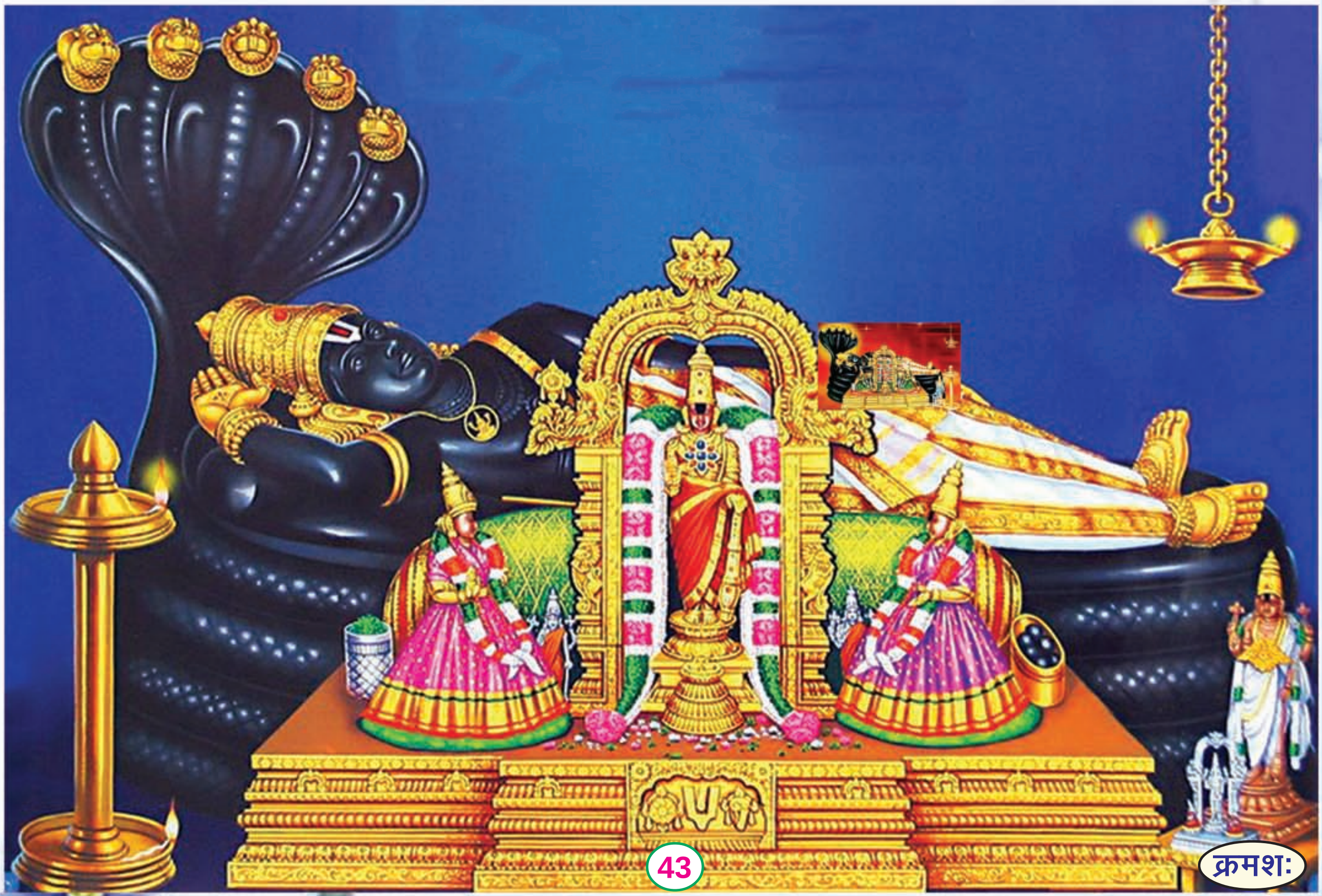

क्रमशः

(गतांक से)

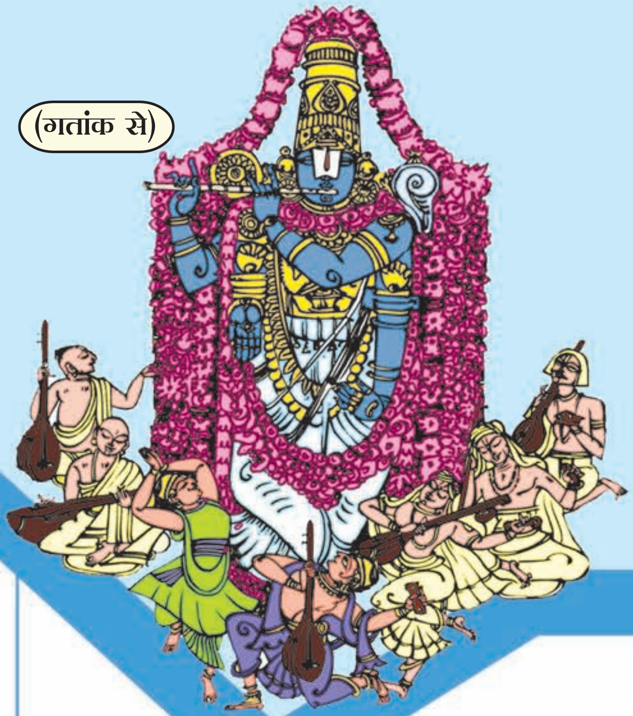

हरिदास वाङ्मय में श्रीवेंकटाचलाधीश

तेलुगु मूल - श्री एस.नागराजाचार्युलु
हिन्दी अनुवाद - डॉ.एम.आर.राजेश्वरी
मोबाइल - ९४९०९२४६१८

''कलियुगदोलु हरिनामवनेनेदरे कुलकोटि गलुद्धरिसुवरो''

और

''नामकीर्तने अनुदिन मार्पिगे नारकभयगलुंटे
नाम ओंदे यमनाल्गल नोददु अजामिलनिगे सुक्षेम वित्तहरि।।''

पुरंदरदास यह कहते हैं कि नित्यप्रति जो भगवान का नामसंकीर्तन गाता है, उसे नरक प्राप्ति का भय नहीं होगा, इस कलियुग में नामसंकीर्तन सेवा समस्त मानव जाति का उद्धार करेगा - इतना ही नहीं, वे यह भी कहते हैं कि नाम संकीर्तन का प्रभाव बड़ा आश्चर्यचकित करता है - जिस भांति सिंह के बच्चे तक को देखकर हाथियों का झुंड भागता है, अग्नि स्फुलिंग के स्पर्श मात्र से दावानल जिस भांति फैलता है, सूर्योदय के तुरंत जिस भांति घना अंधकार दूर होता है, वज्रायुध के लगते ही जिस भांति बड़े-बड़े पर्वत चकनाचूर होते हैं, जिस भांति पक्षीराज गरुड को देखकर विषैले सर्प भय खाते हैं, भांति संकीर्तन के गाने पर सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं।

'गानवपाडिदव हरिमूर्ति नोडिदव' अगर भक्त संकीर्तन गाता है, तो वह श्रीहरि का दर्शन करने के समान होता है। यह योग मार्ग का एक उपाय भी है। इसीलिए विजयदास जी कहते हैं कि श्रीहरि को संगीत पसंद है, इसीलिए मैं उनकी स्तुति गाकर ही करता हूँ- ''गानलोलन कुल्लिरिसि ध्यानदिंद भजिसुवे।'' श्रीहरि को प्रसन्न करने के लिए, संकीर्तन करना शिशुओं के लिए, पशुजाति के लिए, विषैले सर्प जो नाद के अनुरूप नाचते हैं, उन सबके लिए यह आसान उपाय है और इसके कारण सांसारिक बंधनों से मुक्ति भी प्राप्त होती है। श्री जगन्नाथदास भी अपने ग्रंथ 'हरिकथामृत सारम्' में अपना अभिप्राय व्यक्त करते हुए कहते हैं कि जब भक्त दिखावे के लिए ही सही, अगर संकीर्तन गाता हो, अपनी आजीविका के लिए हो, रोग या अन्य उपद्रव के आने पर हो, यह बहुत दीन-दरिद्रस्थिति में अगर मन से स्तुति करता हो, तो विट्ठल अपने-आप उस भक्त को बंधनमुक्त कर देता है। कन्नड भाषा में उन्होंने अपने वचन ऐसा प्रस्तुत किया-

''बिट्टगल नेवदिंदलागलि। होट्टगोसुगवाद डागलि
केट्टरोग प्रयुक्तवागलि। अणकदिंदोम्मे
निट्टुसिरिनिम्भाय्देरेदु हरि विठला सलहेन्देनलुकै-
गोट्टुकाव कृपालु संतत तन्न भकुतरनु''

उन्हीं के विचारों की भांति, तेलुगु भाषी पदकवितापितामह श्री अन्नमाचार्यजी ने भी अपने अनुभव निम्नलिखित रूप से व्यक्त किये -

''इहपर साधनमिदियोकटे। सहजपु मुरारि संकीर्तनोकटे''

तथा

''संतोषकरमैन संकीर्तनम्। संताप मणगिंचु संकीर्तनम्।

जंतुवुल रक्षिंचु संकीर्तनम्। संततमु दलचुडी संकीर्तनम्।।

जलजासनुनि नोरि संकीर्तनम्। चलिकोंड सुत दलचु संकीर्तनम्।।

चलुव कडु नालुकक्कु संकीर्तनम्। चलपट्टि तलचुडे संकीर्तनम्।।

सरविसंपदलिच्चु संकीर्तनम् सरिलेनिदिदिय पोसंकीर्तनम्।

सरुस वेंकट विभुनि संकीर्तनम्। सरुगननु दलचुडी संकीर्तनम्।।''

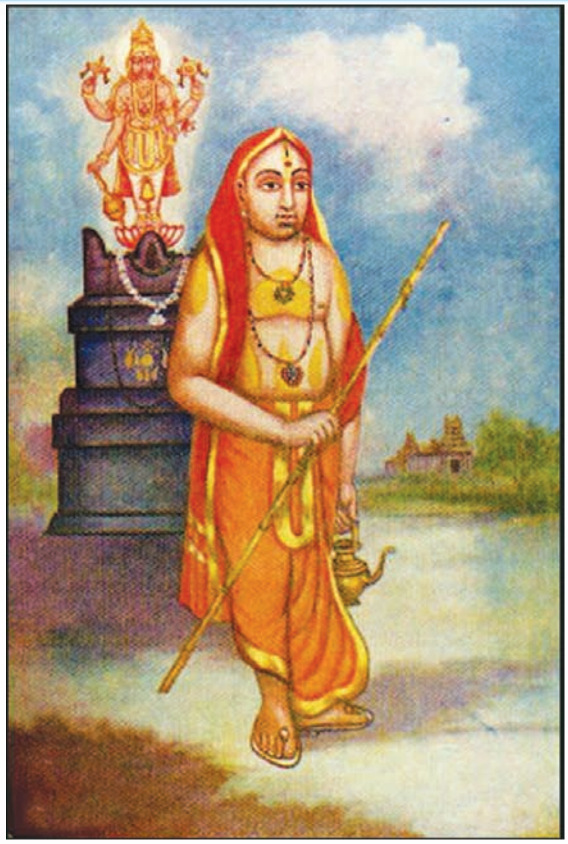

इन्होंने, कर्णाटक के हरिदास भक्तों के संकीर्तन पद्धति का अनुसरण किया तथा अपने गीतों में संकीर्तन की प्रशस्ति करते हुए, साहित्य को राग-ताल के अनुरूप बनाकर, उन्हें न केवल गाने योग्य बनाया, बल्कि श्रीकृष्ण के लीला तरंगों को नृत्य के अनुकूल तालगति के योग्य साहित्य का सृजन कर उन पदों को स्वयं गाया है।

कर्नाटक हरिदास भक्तों की बात जब उठती है, तब उनकी परंपरा का प्रारंभ सर्वप्रथम श्रीपादराय जी से होता है। उनके बाद उनके अनुगामी व्यासरायजी, वादिराज जी, उसके बाद कर्नाटक संगीत के पितामह श्री पुरंदरदास जी, कनकदास, विजयदास, गोपालदास, जगन्नाथदास जी का नाम लिया जाता है। उसी परंपरा में, उनके मार्ग को पकडनेवाले तत्कालीन दास भक्तों से लेकर निकटपूर्व के श्यामसुंदरदासजी तक, नाम लिये जाते हैं। ये सभी हरिदास वेद-शास्त्र-पुराण-उपनिषद् के विषयों को अपने संकीर्तनों का मूलाधार बनाया तथा मध्वसंप्रदाय के अनुरूप संकीर्तनों का सृजन किया। उनका राग-व-ताल संयोजन अति सरल व अति सुंदर बन पड़े हैं। उन्हें इतना सुंदर बनाया कि उनके गाने पर अतीव आनंद का अनुभव होता है। उनके पद के शब्दों के गूढ़ार्थ की अनुभूति गायकों को अनंत

आनंद प्रदान करते हैं। जो भी हो, इनका संकीर्तन साहित्य सर्वकालसर्वावस्थाओं में समस्त जनसम्मत साहित्य माना जाता है। एक वाक्य में कहें तो- ''एकमापात मधुरं अन्यदालोचनामृतं'' इनका साहित्य स्वास्थ्यप्रदाता, ऐश्वर्यप्रदाता, आयु की वृद्धि के हेतु बनकर, समस्त विश्व के लिए हितकारी बन विश्वसाहित्य बन पड़ा है।

कर्नाटक के हरिदास भक्तों के संकीर्तन साहित्य की एक विशिष्टता है- ये सभी देवतास्तुतियों से युक्त तथा वैराग्य प्रबोधक नजर आते हैं। ये भारत के सभी देवी-देवताओं की स्तुति करते हैं लेकिन अंततोगत्वा विठल भगवान को समर्पित करके विठलांकित बना देते हैं। श्रीपादराय जी से लेकर, आज के हरिदास भक्तों तक विशेष रूप से गणपति, पार्वती, वारुणि, सापर्णि, भारती, सरस्वती को स्तुति करते दिखाई देते हैं। इनके साथ-साथ गरुड, शेषजी, रुद्र, वायुदेव, महालक्ष्मी तथा श्रीहरि के समस्त लीला अवतारों की स्तुति, विशेष रूप से अभीष्टसिद्धि के लिए करते हुए प्रकट होते हैं। किस नेपथ्य में इन सभी देवताओं की विशेष स्तुति की जा रही है, उसके बारे में पुरंदरदास जी अपने विचार निम्नलिखित रूप से प्रकट करते हैं -

''सतत गणनाथ सिद्धिय नीव कार्यदलि।
मति प्रेरिसुवलु पार्वतीदेवी मु-
कुतिपथके मनवीव महरुद्रदेवरु हरिभ-
कुति दायकलु श्री भारतीदेवी- यु
कुति शास्त्रगलल्लि वनजसंभवनरसि
सत्कर्म गलनडेसि सुज्ञान मतियत्तु
गतिपालिसुव नम्म गुरु पवमाननु
चित्तदलि आनंदसुखव नीवलु रमा भ
कुत जनरोडय श्रीपुरंदर विठलनु
सतत इवरोलु निंत ई कृति नडेसुवनु।''

पुरंदरदास जी समस्त कार्य सिद्धि के लिए गणपति की स्तुति, सद्‌बुद्धि के लिए पार्वती की स्तुति, मुक्ति के पथ पर मन को ले जाने के लिए रुद्र की स्तुति, भक्ति की प्राप्ति के लिए भारतीदेवी की, सकलशास्त्र प्रज्ञा प्राप्ति के लिए सरस्वती देवी की स्तुति, सद्गति को प्रदान करने के लिए हनुमान की, मन को आनंद की प्राप्ति के लिए रमादेवी की स्तुति अपने संकीर्तनों के प्रारंभ में करके, इनके द्वारा श्री पुरंदर विठल से कृपा-कटाक्ष को प्रदान करने का आग्रह करते हैं। इन्होंने समस्त देवी-देवताओं की स्तुति असंख्य संकीर्तनों में अलग-अलग रूप से भी किया है। पुरंदरदास जी ने श्रीहरि के दशावतार लीलाओं का वर्णन ही नहीं बल्कि भागवत् में व्यक्त श्रीहरि के अन्य अवतारों का वर्णन भी रसात्मक ढंग से अपने संकीर्तनों में प्रकट कर गाया है। बहुधा संकीर्तन विशेष रूप से नरसिंह, श्रीराम, श्रीकृष्ण के अवतार लीलाओं से भरे हुए दिखाई देते हैं।

क्रमशः

भगवद्गीता और नौजवान

कर्ता के अनुसार कार्य

तेलुगु मूल - डॉ.वैष्णवाँघ्रि सेवक दास
हिन्दी अनुवाद - श्री अमोघ गौराँग दास
मोबाइल - ९८२१९१४६४२

किसी कार्य में सफलता प्राप्त होने पर सभी का पहला प्रश्न होता है कि उस कार्य को किसने किया? यह सभी का अनुभव है। कार्य में जुटने पर कठिन-से-कठिन कार्य भी सरलता से पूर्ण हो जाता है, लेकिन कुछ व्यक्ति आसान-से-आसान कार्य को भी अत्यन्त कठिन बना देते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि किसी भी कार्य की सफलता में कार्यवाहक अर्थात् कर्ता की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। इस तथ्य को जानने वाला व्यक्ति प्रत्येक कार्य के लिए कर्ता का चयन अत्यंत सावधानी से करता है। किसी कार्य के लिए उचित कर्ता के चयन का सही ज्ञान होने वाले व्यक्ति को उस कार्य के परिणाम की चिंता करने की आवश्यकता नहीं होती है। पक्षपात या भाई-भतीजावाद के प्रभाव में किसी कार्य के लिए अयोग्य व्यक्ति का चुनाव करने पर उस कार्य में घोर असफलता को अंत देखना पड़ता है। इसी सीख से व्यक्तिगत जीवन का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने कार्यों का पूर्ण उत्तरदायित्व स्वयं ही लेना चाहिए। बहुधा अनेकों व्यक्ति अपने प्रयत्नों में या तो लगातार असफल होते हैं या फिर उन्हें केवल आंशिक सफलता ही प्राप्त होती है। एसी स्थिति में उन्हें क्या करना चाहिए? इसका सीधा उत्तर है कि उन्हें भगवद्गीता के निर्देशों का पालन करके एसी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति से बाहर निकलना चाहिए।

मनुष्य जिस अवस्था में एक समस्या को जन्म देता है उसी अवस्था में उस समस्या का हल प्राप्त करना संभव नहीं है। लगातार सभी प्रयत्नों के असफल होने पर एक व्यक्ति को अपनी कार्यविधि को बदलना चाहिए। अपने प्रयत्नों एवं कार्यविधि में सुधार के बिना किसी चमत्कार की अपेक्षा करना व्यर्थ है। प्रतियोगी परीक्षाओं में बार-बार असफल होने पर एक व्यक्ति को अपनी अध्ययन विधि एवं तैय्यारी में बदलाव लाना चाहिए। अपने प्रयत्नों में सदैव सफल होने के लिए भगवद्गीता में कर्ता के गुणों का वर्णन किया गया है। सर्वप्रथम कर्ता को सभी परिस्थितियों में उत्साहित रहने का प्रयत्न करना चाहिए। अहंकार एवं घमंड के लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिए। उसे कार्य में आने वाली बाधाओं की न तो चिंता करनी चाहिए और न ही उनसे दूर भागना चाहिए। उसे कार्य में अंत तक उत्साहपूर्ण रहना चाहिए। सफलता या असफलता से एसे कार्यकर्ता के उत्साह में कमी नहीं

आती है। अर्थात् वह चुने हुए कार्य को महान उत्साह एवं दृढ़निश्चय से करता है एवं सफलता और असफलता के विचारों द्वारा आगे-पीछे नहीं होता है। एसा व्यक्ति सतोगुण में स्थित माना जाता है।

सामान्य रूप से एक कर्ता का स्वभाव बहुत अलग होता है। उनका ध्यान कार्यफल में अधिक रहता है और उन्हें फल से बहुत लगाव होता है। कार्य से सफल न होने पर वे दुःखी हो जाते हैं, अपने कार्यों के तुल्य कार्यों में दूसरों को सफल होते देख कर उन्हें ईर्ष्या होती है, वे अपने सभी कार्यों की सफलता का श्रेय पाने के लोभी होते हैं, वे अंतः एवं बाह्य दोनों रूपों से दूषित होते हैं, इसीलिए वे रजोगुणी कहलाते हैं। सामान्यतः यह जगत एसे कार्यकर्ताओं से भरा हुआ है। वे अत्यंत ईर्ष्यालु होते हैं और दूसरों की सफलता नहीं देख सकते हैं। उन्हें स्वयं द्वारा अर्जित संपत्ति के शुद्ध या अशुद्ध होने की चिंता नहीं होती है। सफलता पाने के लिए वे किसी अनुचित मार्ग को अपनाने के लिए भी तैय्यार हो जाते हैं। एसे कार्यों में लिप्त लोगों को धीरे-धीरे भलाई के मार्ग पर चलने का प्रयत्न करना चाहिए। यह संदेश विशेष रूप से उस युवाओं के लिए है जिनका उद्देश्य केवल शिक्षा प्राप्त करने में सफल होना है। उन्हें पूर्ण उत्साह के साथ अपनी शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने में विजयी होना चाहिए। उन्हें अपने जीवन में से एक रजोगुणी कर्ता के सभी लक्षणों को निकाल देना चाहिए। और उन्हें अपने जीवन में एक अज्ञानतापूर्ण कर्ता के लक्षणों को भी कोई स्थान नहीं देना चाहिए।

लेकिन एक अज्ञानतापूर्ण कर्ता के क्या लक्षण हैं? अज्ञान कार्यकार्त कठोर स्वभाव के, अन्यों को अपमानित करने में कुशल, सदैव आलस्य से पूर्ण, अकारण ही दुःखी रहने वाले, स्वाभाविक रूप से सभी कार्यों में विलम्ब करने वाले, कुछ घंटों में पूर्ण होने वाले कार्यों को पूर्ण करने में वर्षों लगा देने वाले, कभी किसी कार्य में सतर्क न रहने वाले और सभी आवश्यक कार्यों को न करने एवं उन पर ध्यान न देने वाले होते हैं। ये अज्ञानता की स्थिति में कार्य करने वाले व्यक्ति के आवश्यक गुण हैं। एसे व्यक्ति अपने प्रकृति के गुणों के अनुसार कार्य करते हैं, न कि शास्त्रों में दिये निर्देशों के अनुसार। वे हठी स्वभाव के तथा दूसरों को धोखा देने में बिल्कुल संकोच नहीं करते हैं। एसा स्वभाव सभी के लिए और विशेषतः युवाओं के लिए अत्यंत संकटपूर्ण है। इससे स्थाई आनंद की प्राप्ति कभी नहीं होती है। अज्ञानता की अवस्था में कार्य करने वाले व्यक्तियों को कम से कम जोश पूर्ण रजोगुणी अवस्था में परिवर्तित होने का प्रयत्न करके शांति की ओर कदम बढ़ाना चाहिए। इसी प्रकार रजोगुणी कर्ता को सतोगुणी अवस्था में कार्य करने का प्रयत्न करना चाहिए। भगवद्गीता के उपदेश के अनुसार जीवन में सदैव सफलता प्राप्त करने के लिए नौजवानों को सदैव सतोगुणी अवस्था में कार्यों को करने का प्रयत्न एवं एसा करने की इच्छा रखनी चाहिए।

श्री वेंकटेश्वर परब्रह्मणे नमः

हिन्दू होने के नाते गर्व कीजिए!

* ललाट पर अपने इच्छानुसार (चंदन, भस्म, नामम्, कुंकुम) तिलक का धारण करें।
* नहाने के बाद निम्न भगवन्नामों में से किसी एक का एक पर्याय में १०८ बार जप करें।

श्री वेंकटेशाय नमः।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो नारायणाय।

श्री प्रपन्नामृतम्

(१४वाँ अध्याय)

मूल लेखक - श्री स्वामी रामनारायणाचार्यजी

प्रेषक - श्री रघुनाथदास रान्दड

मोबाइल - ९९००९२६७७३

(गतांक से)

विशिष्टाद्वैत दर्शन के आधारभूर तत्त्वों में प्रमाण

ब्रह्मरात्र में साक्षात् भगवान विष्णु का वचन है-

प्रणवेनैव मन्त्रेण मृदा वै मामनुस्मरन्।
ललाटे धारयेन्नित्यं मम सायुज्यमाप्नुयात्।।

अर्थात्-प्रणव का उच्चारण करके मेरा ध्यान करते हुए मस्तक में तिलक धारण करने वाले व्यक्ति मेरे सायुज्य को प्राप्त करते है। ऊर्ध्वपुण्ड्र का आकार निर्णय वशिष्ठस्मृति में निम्न प्रकार है-

नासिकामूलमारभ्य आकेशान्तं प्रकल्पयेत्।
अंगुलं पार्श्वमेकं तु ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य लक्षणम्।।

अर्थात्-नाक में मूल से लेकर केश पर्यन्त ललाट पर ऊर्ध्वपुण्ड्र का दोनों पार्श्व एक-एक अँगुल चौड़ा करना चाहिये। सनत्कुमार संहिता में लिखा है कि -

ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदा धार्यं सच्छिद्रं सौम्यमेव च।
तदलंकरणार्थाय हरिद्रां धारयेच्छ्रियम।।

श्रीवैष्णव को मृत्तिका (पासा) का सुन्दर सच्छिद्र अपने ललाट पर ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करके उसको अलंकृत करने के लिए (बीच में) हरिद्रा की श्री धारण करना चाहिये। और भी-

ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्ये तु अन्यद्रव्यं न धारयेत्।।
हरिद्रां धारयेच्चूर्णं सर्वपापैः प्रमुच्यते।।

अच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं तु ये कुर्वन्ति द्विजाधमा।
तेषां ललाटे सततं श्वानपादो न संशयः।।

अर्थात्-ऊर्ध्वपुण्ड्र के बीच में दूसरा द्रव्य न धारण करे। श्रीचूर्ण धारण करने वाला मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है। जो छिद्र रहित ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करता है उसके ललाट पर कुत्ते के चरण जैसे चिह्न की भांति अपवित्र एवं अदर्शनीय रहता है। पद्मपुराण में श्रीवैष्णवों का निम्नलक्षण और माहात्म्य वर्णित है:-

ये कण्ठलग्नतुलसीनलिनाक्षमाला,
ये बाहुमूलपरिचिह्नितशंखचक्राः।।
येषां ललाटफलके लसदूर्ध्वपुण्ड्रास्ते वैष्णवाः
भुवनमाशु पवित्रयन्ति।।

जिन श्रीवैष्णवों के गले में तुलसी और कमल की माला, भुजमूल में तप्त शंख-चक्र का चिह्न और मस्तक पर सुंदर सच्छिद्र ऊर्ध्वपुण्ड्र विराजमान है, उनके द्वारा तीनों लोक पवित्र हो जाते हैं। ईश्वर संहिता और ऊर्ध्वपुण्ड्र का निम्न विधान और महिमा वर्णित है-

विष्णुदेहपरामृष्टं यच्चूर्णं शिरसा वहेत्।
सोऽश्वमेधफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते।।
सांतरालोर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्ये श्रीशस्य धामनि।
हरिद्रासारसम्भूतरजसा धारयेच्छ्रियम्।।

भगवद् विग्रह से स्पर्श कराकर शूद्र श्रीचूर्ण को मस्तक पर धारण करने वाले श्रीवैष्णव अश्वमेध का फल प्राप्त कर वैकुण्ठलोक में सम्मानित होते हैं। अतः सच्छिद्र ऊर्ध्वपुण्ड्र के बीच में श्रीचूर्ण धारण करना चाहिये। सन्यासी के त्रिदण्ड धारण में शास्त्रों का निम्न मत-पराशरस्मृति में लिखा है-

एकोपवीतं धार्यं स्याद्यतीनां ब्रह्मचारिणाम्।
गृहस्थानां वनस्थानामुपवीतोभयं स्मृतम्।।

ब्रह्मचारी और सन्यासी को एक यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये एवं गृहस्थ तथा वाणप्रस्थ को दो-दो यज्ञोपवीत पहनना चाहिये। श्रीपांचरात्र में लिखा है कि -

काषायवस्त्रं युग्मंच वेणुयष्टिंच धारयेत्।
कौपीनं कटिसूत्रं च छत्रं ताम्रकमलण्डलुम्।
छिद्रोर्ध्वपुण्ड्रमेकं वा तथा द्वादशमेव वा।
तुलसीनलिनाक्षाणां मालिकाधारणं तथा।
भुजयोर्गुरुणा सम्यक् शंखचक्रं च धारयेत्।
यज्ञोपवीतमेकंच सम्यग्धारयतीश्वरः।

अर्थात् सन्यासी को दो काषाय वस्त्र, त्रिदण्ड, कोपीन, कटिसूत्र, कमण्डलु, सच्छिद्र ऊर्ध्वपुण्ड्र एक अथवा बारह, तुलसी अथवा कमल की माला, सविज्ञान गुरुप्रदत्त शंख-चक्र तथा एक (तीन सूत्र वाला सफेद) यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये। पांचरात्र में ही आया है कि एकदण्ड धारण करने वाला ब्राह्मण एवं धर्म का परित्याग करने वाला क्रियाहीन ब्राह्मण नरकगामी होता है। यही नहीं-जो सन्यासी शिखा यज्ञोपवीतादि का परित्याग कर देता है वह जीते जी चाण्डाल की तरह और मरकर कुत्ते की जाति ग्रहण करता है। ब्रह्मचारी को मौंजी, मृगचर्म, दण्ड ग्रहण करना चाहिये और गृहस्थ को मुण्डन कराकर फिर अँगुलिकीय ग्रहण करना चाहिये।

ब्रह्म के सगुणत्व में निम्नांकित शास्त्रीय प्रमाण है- उपनिषद् में लिखा है कि- ''यः सर्वज्ञः सर्ववित्'' अर्थात्- ब्रह्म सर्वज्ञ एवं सभी चीजों को अलग-अलग रूप में तत्त्वतः जानता है।

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।।

अथात् परब्रह्म परमात्मा की अनेक प्रकार की शक्तियाँ श्रुति सम्मत हैं। उसी परब्रह्म परमात्मा की ज्ञान-बल तथा अनेक क्रियाएँ नैसर्गिक हैं। वही परब्रह्म परमात्मा अनेक कल्याण गुणगणों का समुदाय स्वरूप है। परब्रह्म परमात्मा को गुणाष्टक सम्पन्न बतलाती हुई श्रुतियाँ कहती हैं कि -

एष आत्माऽपहत्पाप्मा, विज्वरो,
विमृत्युर्विशोकोऽविजिधित्सोऽपिपासः
सत्यकामः सत्यसंकल्पः।।

और भी

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं, तं दैवतानां परमंच दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्माद्विदाम देवं भुवनेशमीऽयम्।।

अर्थात्-हम सभी जीव इन्द्रादि सभी देवताओं के भी नियन्ता सर्वेश्वर सर्वशेषी भगवान विष्णु को ही प्रणाम के योग्य मानते हैं। ''ज्ञाज्ञौद्वावजावीशानीशौ।'' एक ही शरीर में दो अजन्मा चेतनों का निवास है किन्तु एक सर्वज्ञानमय है और दूसरा अज्ञानमय एवं एक शासक है दूसरा शासित। परब्रह्म परमात्मा की सगुण महत्ता प्रतिपादन करती हुई श्रुतियाँ कहती हैं कि-

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूसां
यो विदधाति कामान्।।

अर्थात्-परब्रह्म परमात्मा सभी गरुड़, शेष आदि नित्य जीवों से भी बढ़कर नित्य हैं, वे सभी बद्ध, मुक्त, नित्य आदि प्रकार चेतनों से भी बढ़कर सर्वश्रेष्ठ चेतन हैं, ये ही परब्रह्म परमात्मा स्वेतर सभी पदार्थों से सर्वतः विलक्षण होने के कारण अकेले भी स्वाश्रित समस्त चेतनों की इच्छाओं की पूर्ति करते हैं। नारायणोपनिषद् में परब्रह्म परमात्मा की विशेषता बतायी है कि -

नारायणः परब्रह्म तत्त्वं नारायणः परः नारायणपरावेदाः।
नारायण एवेदं सर्वं निष्कलंको निरंजनो
निर्विकल्पो निराख्यातः शुद्धो देव एको नारायणः।
एको ह वै नारायण आसीत्। न ब्रह्मा नेशानः।
ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः
भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः।।

अर्थात्-नारायण पदवाच्य ही परब्रह्म है, नारायण ही परतत्व है। सभी वेद मन्त्र उन्हीं नारायण को बतलाते हैं। यह सम्पूर्ण दृश्यमान् जगत् नारायणमय है। ये ही नारायण कलंकरहित, पापरहित एवं विकल्परहित हैं। सम्पूर्ण वेदों तथा उपवृहण ग्रन्थों द्वारा वर्णित होकर भी अनन्त होने के कारण ये पूर्णतः वर्णित नहीं हैं। नारायण ही सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वताः शुद्ध देवता हैं। सृष्टि के पूर्वकाल में सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्ट केवल नारायण ही थे। न तो ब्रह्म थे न रुद्र। समस्त हेय गुणरहित समग्र ज्ञानशक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेजवान् को ही भगवान कहते हैं। महाभारत में नारायण को ही सर्वश्रेष्ठ आश्रय बताया गया है। मोक्षधर्म में भी भगवत्शरणागति का अन्तिमोपदेश किया है। क्योंकि शास्त्रों में नारायण को ही वास्तविक माता-पिता एवं आचार्य बतलाया गया है। नारायण ही जगत्कारण हैं तथा त्रिपादविभूति ब्रह्म का ही स्वरूप है विष्णुधर्मोत्तर पुराण में भी सनातन भगवान विष्णु की ही शरणागति बतलाई गई है। अतः भगवान, विष्णु, नारायणादि पदवाच्य सर्वज्ञ, सर्वशक्ति, सर्वेश्वर सकलजगत्कारण परब्रह्म का सगुणत्व श्रुति सिद्धान्त सिद्धान्तित है। श्रीकूरेशाचार्यजी के श्रुतिन्यायोपेत प्रमाणों से आश्चर्यित पं० यादवप्रकाशाचार्य, श्रीरामानुजाचार्य तथा श्रीकूरेशाचार्यजी से आज्ञा ले आने मठ में चले गये।

श्रीकूरेशाचार्य स्वामीजी यादवप्रकाशाचार्य को अपने उपर्युक्त शंख-चक्र धारण, ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण, त्रिदण्ड धारण एवं भगवान के सगुणत्व सम्बन्धी शास्त्रीय प्रमाणों से पराजित करके यतिश्रेष्ठ श्रीरामानुजाचार्य की सेवा में संलग्न हो गये।

।। श्रीप्रपन्नामृत का १४वाँ अध्याय पूर्ण हुआ ।।

क्रमशः

अगस्त महीने का राशिफल

- डॉ.केशव मिश्र
मोबाइल - ९९८९३७६६२५

मेषराशि - भूमि-जायजाद का क्रय-विक्रय, भवन निर्माण आदि के विकास के कार्य होंगे। नौकरी-व्यवसाय की स्थिति सामान्य रहेगी। विवादों से बचकर रहें अन्यथा झेलना पर सकता है। कृषि कार्यों में प्रगति होगी।

वृषभराशि - मासफल साधारण रहेगा। सामाजिक कार्यों में सफलता। अपनों का सहयोग मिलेगा। पारिवारिक दायित्व का निर्वहन ठीक ढंग से होगा। विद्यार्थियों के लिए समय अनुकूल रहेगा।

मिथुनराशि - मासफल मध्यम है। समय-समय पर स्वास्थ्य चिंता मानसिक तनाव। अनावश्यक वाद विवाद तथा रोगादि में धन व्यय की स्थिति बनी रहेगी।

कर्कराशि - स्वास्थ्य सामान्य। नौकरी-व्यवसाय की स्थिति सामान्य रहेगी। स्वजनों से तथा इष्टमित्रों के सहयोग से अभिष्टकार्य की सिद्धि होगी। विद्या में प्रगति, संतान सुख। सुखद यात्राऐं होगी।

सिंहराशि - नौकरी में पदोन्नति, स्थान परिवर्तन का योग है। यात्रा व्यय, पारिवारिक कष्ट, माता को कष्ट। विपक्षी निर्बल रहेंगे। शिक्षा में प्रगति, व्यवसाय में लाभ, गृह निर्माण।

कन्याराशि - मासकल मध्यम है। नौकरी व्यवसाय की स्थिति सामान्य रहेगी। कुटुम्बजनों से परेशानी। अपने धनों का उपयोग देख कर करे। गृह-पारिवारिक सुख। इष्टमित्रों का सहयोग है।

तुलाराशि - भाग्य परिवर्तन, धनलाभ, जीवन की जिम्मेदारियों का उचित निर्वहन, संतान सुख। राजकीय मामलों में सफलता प्राप्त होंगे। व्यापार में लाभ, स्वजनों का सहयोग।

वृश्चिकराशि - आर्थिक चिन्ता, कुटुम्ब वर्गों से तनाव तथा आंतरिक मतभेद, अनावश्यक धनक्षति। वाहन सुख, शिक्षा में सफलता, नौकरी में पदोन्नति, संतान सुख, नूतन व्यापार में अल्प लाभ।

धनुराशि - अनेक सुखद सफल यात्राएँ होंगी। मान-सम्मान, प्रतिष्ठा में वृद्धि। व्यवसाय में लाभ, धनलाभ, वस्त्रलाभ, आरोग्य सुख। विपत्तियों से सावधानी, लेनदेन आदि में धोखाधड़ी की सम्भावना विशेष रहेगी।

मकरराशि - अपने वाणी-व्यवहार में नियंत्रण रखें अन्यथा कठिनाई का सामना करना पडेगा। पारिवारिक सुख-शांति, व्यावसायिक कार्यों में लाभ। नेत्र रोग। कठिन परिश्रम से शिक्षा में सकलता।

कुम्भराशि - वायु विकार, व्यवसाय में सफलता, पद-प्रतिष्ठा की वृद्धि, धनागम, दाम्पत्य सुख, पारिवारिक सुख प्राप्त होंगे। अनावश्यक वाद-विवादों से बचे। स्थान परिवर्तन का योग है।

मीनराशि - वात, पित्त, जन्य विकार की शिकायत रहेगी। नौकरी-व्यवसाय की स्थिति सामान्य रहेगी। छात्रों के लिए अनुकूल समय रहेगा। विशिष्टजनों का सहयोग प्राप्त होंगे। आर्थिक पक्ष मजबूत रहेगा।

आइये, संस्कृत सीखेंगे..!!

आयोजक - महामहोपाध्याय समुद्राल लक्ष्मणय्या,
श्री किरणभट

हिन्दी में निर्वहण - डॉ.सी.आदिलक्ष्मी
मोबाइल - ९९४९८७२१४९

पाठ - ३

ध् + न = ध्न	प् + न = प्न	भ् + न = भ्न
ध् + म = ध्म	प् + प = प्प	भ् + य = भ्य
ध् + य = ध्य	प् + म = प्म	भ् + र = भ्र
ध् + र = ध्र	प् + य = प्य	भ् + व = भ्व
ध् + व = ध्व	प् + र = प्र	म् + न = म्न
न् + ख = न्ख	प् + ल = प्ल	म् + प = म्प
न् + त = न्त	प् + व = प्व	म् + ब = म्फ
न् + थ = न्थ	प् + स = प्स	म् + भ = म्ब
न् + द = न्द	फ् + य = फ्य	म् + फ = म्भ
न् + ध = न्ध	फ् + र = फ्र	म् + म = म्म
न् + न = न्न	ब् + ज = ब्ज	म् + य = म्य
न् + प = न्प	ब् + द = ब्द	म् + र = म्र
न् + म = न्म	ब् + ब = ब्ब	म् + ल = म्ल
न् + य = न्य	ब् + भ = ब्भ	य् + य = य्य
न् + र = न्र	ब् + य = ब्य	य् + व = य्व
न् + व = न्व	ब् + र = ब्र	र् + क = र्क
प् + त = प्त	ब् + स = ब्स	र् + ख = र्ख

र् + ग = र्ग	र् + श = र्श	ष् + प = ष्प
र् + घ = र्घ	र् + ष = र्ष	ष् + म = ष्म
र् + च = र्च	र् + स = र्स	ष् + य = ष्य
र् + छ = र्छ	र् + ह = र्ह	ष् + व = ष्व
र् + ज = र्ज	ल् + क = ल्क	ष् + ष = ष्ष
र् + झ = र्झ	ल् + ग = ल्ग	स् + क = स्क
र् + ट = र्ट	ल् + प = ल्प	स् + ख = स्ख
र् + ठ = र्ठ	ल् + भ = ल्भ	स् + त = स्त
र् + ड = र्ड	ल् + म = ल्म	स् + थ = स्थ
र् + ढ = र्ढ	ल् + य = ल्य	स् + न = स्न
र् + ण = र्ण	ल् + ल = ल्ल	स् + प = स्प
र् + त = र्त	ल् + व = ल्व	स् + फ = स्फ
र् + थ = र्थ	व् + य = व्य	स् + म = स्म
र् + द = र्द	व् + र = व्र	स् + य = स्य
र् + ध = र्ध	श् + च = श्च	स् + र = स्र
र् + न = र्न	श् + म = श्म	स् + व = स्व
र् + प = र्प	श् + य = श्य	स् + स = स्स
र् + फ = र्फ	श् + र = श्र	ह् + ण = ह्ण
र् + ब = र्ब	श् + ल = श्ल	ह् + न = ह्न
र् + भ = र्भ	श् + व = श्व	ह् + म = ह्म
र् + य = र्य	श् + श = श्श	ह् + य = ह्य
र् + र = र्र	ष + क = ष्क	ह् + र = ह्र
र् + ल = र्ल	ष् + ट = ष्ट	ह् + ल = ह्ल
र् + व = र्व	ष् + ठ = ष्ठ	ह् + व = ह्व

Edited and Published on behalf of T.T.Devasthanams by **Prof.K.Rajagopalan,** Ph.D., Chief Editor, T.T.D. and Printed at T.T.D. Press by **Sri P.Ramaraju,** M.A., Special Officer (Press & Publications), T.T.D. Press, Tirupati-517 507.

तिरुमल
श्री वेंकटेश्वरस्वामीजी का नवरात्रि ब्रह्मोत्सव
२०२० अक्तूबर १६ से २४ तक

१६-१०-२०२०
शुक्रवार
दिन - स्वर्ण तिरुच्चि उत्सव
रात - महाशेषवाहन

१७-१०-२०२०
शनिवार
दिन - लघुशेषवाहन
रात - हंसवाहन

१८-१०-२०२०
रविवार
दिन - सिंहवाहन
रात - मोतीवितानवाहन

१९-१०-२०२०
सोमवार
दिन - कल्पवृक्षवाहन
रात - सर्वभूपालवाहन

२०-१०-२०२०
मंगलवार
दिन - पालकी में
मोहिनी अवतारोत्सव
रात - गरुडवाहन

२१-१०-२०२०
बुधवार
दिन - हनुमन्तवाहन
रात - गजवाहन

२२-१०-२०२०
गुरुवार
दिन - सूर्यप्रभावाहन
रात - चंद्रप्रभावाहन

२३-१०-२०२०
शुक्रवार
दिन - स्वर्णरथोत्सव
रात - अश्ववाहन

२४-१०-२०२०
शनिवार
दिन - चक्रस्नान
रात - तिरुच्चि उत्सव

SAPTHAGIRI (HINDI) ILLUSTRATED MONTHLY Published by Tirumala Tirupati Devasthanams
printing on 30-08-2020. Regd. with the Registrar of Newspapers under "RNI" No.10742, Postal Regd.No.TRP/11 - 2018-2020
Licensed to post without prepayment No.PMGK/RNP/WPP-04/2018-2020

श्री विखनस आचार्य की जयंती

०३-०८-२०२०